आध्यात्मिक मासिक पत्रिका

जुलाई- २००५

श्रीमद्भागवत ज्ञान-यज्ञ प्रचार समिति

एक शाम राम के नाम, शिक्षायतन (बड़ौरा उच्च विद्यालय)

बड़ौरा स्थित श्री दूधनाथ बाबा के मन्दिर में जल चढ़ाते हुए प. पू. 'बालव्यास' जी, पार्श्व में श्री लक्ष्मण सिंह एवं श्रीमती गीता सिंह

पूज्य बालव्यास जी को शिक्षायतन (बड़ौरा उच्च विद्यालय की छात्रा सुश्री पूजा तिवारी द्वारा माल्यार्पण। पार्श्व में विद्यालय के कार्यकारी अध्यक्ष श्री ओमप्रकाश कसेरा

शिक्षायतन (बड़ौरा उच्च विद्यालय) के व्यास कक्ष में विराजमान पूज्य बालव्यास जी अगल-बगल में बाये से खड़े श्रीमती कुसुम भालोटिया, बृजवासी जी, श्रीमती गीता सिंह, श्री अशोक सेठ एवं श्री पवन बंसल तथा बैठे हुए श्री लक्ष्मण सिंह, श्री जितेन्द्र सिंह राठौर एवं विद्यालय के कार्यकारी अध्यक्ष श्री ओम प्रकाश कसेरा

पूज्य 'बालव्यास' जी का उपदेश श्रवण करते श्रद्धालु श्रोताओं की भीड़

इस अंक में

वर्ष : ८ अंक : ६

रस-बनमाली

आध्यात्मिक मासिक पत्रिका

जुलाई २००५/आषाढ़ २०६२ वि.

सत्संग-समाचार

सद्ग्रंथ चर्चा

साधना-उपासना

दृष्टांत एवं प्रसंग

पद्य-कविताएँ

धारावाहिक

विशेष

मानद सम्पादक :
श्रीमती रंजना शर्मा

सम्पादक :
गोपालदास अग्रवाल

प्रकाशक एवं प्रबन्ध सम्पादक :
कमलेश बाजोरिया

संवाद-प्रतिनिधि :
कैलाशनाथ पाण्डेय

मूल्य : १० रुपये

वार्षिक	१००/-रु.
छः वर्षीय	५००/-रु.
बारह वर्षीय	१०००/-रु.
पेट्रन निधि	५०००/-रु.
सेवा निधि	(स्वैच्छिक)

श्रीमद्भागवत ज्ञान-यज्ञ प्रचार समिति की ओर से कमलेश बाजोरिया द्वारा कावरा ऑफसेट्स, रवीन्द्रपुरी, वाराणसी में मुद्रित एवं के. ४६/१०८ए., विशेश्वरगंज, वाराणसी से प्रकाशित।
सम्पादक : गोपालदास अग्रवाल

स्वयं का जागरण

दूसरों की जाग्रतावस्था स्वयं को लाभान्वित नहीं करतीं। स्वयं के जागरण से ही खुद को लाभ मिलता है। फिर जो जाग जाता है वही जान पाता है कि दूसरे कौन-कौन लोग जाग रहे हैं, कौन-कौन सो रहे हैं। जो सोता है उसे न अपने विषय में कुछ पता होता है न दूसरे के विषय में कुछ पता होता है। उसका समय सोते ही बीत जाता है। जिसे अपने विषय में कुछ पता ही नहीं होता उसे दूसरे के विषय में जानने की क्षमता पैदा ही कहाँ हो सकती है। जो जागता है उसे सर्वप्रथम अपनी जाग्रतावस्था का बोध होता है। सोता आदमी यह जानने की क्षमता नहीं रखता कि वह कौन है, कहाँ से आया है, उसके माता-पिता और सम्बन्धी कौन हैं? सुषुप्तावस्था में सारे संबंधों की विस्मृति रहती है। जागरण की स्थिति में सबसे पहले आत्मज्ञान होता है।

जिन्हें अपने मूल संबन्धों की अनुभूति नहीं है, ठिकानों का पता नहीं है, लक्ष्य का ज्ञान नहीं है उनकी स्थिति सोए हुए लोगों जैसी ही है। कोई कितना भी सुन्दर हो, प्रतिभावान, विद्वान क्यों न हो, पर यदि वह सो रहा है तो उसके सौंदर्य और उसकी प्रतिभा का क्या मूल्य है? संसार में लोग दूसरा सब कुछ प्राप्त करने की चेष्टा में लगे हुए हैं परन्तु उसी दिशा से मुँह मोड़े हुए हैं जो जीवन का लक्ष्य है। संसार में दो तरह के लोग हैं, भोगी और योगी। भोगी जिसे जोड़ता है योगी उसे छोड़ता है। योगी जिसे जोड़ता है भोगी उस ओर प्रवृत्त ही नहीं होता। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि योगीजन जिस रात जागते हैं, भोगीजन उस रात सोते हैं और भोगीजनों का जो दिन होता है वह योगीजनों की रात होती है। **'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यामा जागर्ति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने ।।'** किसी को जाग्रत तभी माना जा सकता है जब उसके अंतःकरण में विषयों के प्रति वैराग्य का उदय हो गया हो। गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है– **'जानेहुं तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय विलास विरागा।।'** जागने वाले व्यक्ति का पहला लक्षण ही यही है कि वह सदैव जागने वालों के बीच ही रहना पसंद करता है।

सोये हुए लोग किसी को पहचानने की क्षमता नहीं रखते। कई बार जो जागते हुए दिखाई देते हैं वे भी सुषुप्तावस्था में होते हैं। जिन्हें पहचानना चाहिए उन्हें कोई यदि नहीं पहचान रहा है तो वह सोया हुआ ही तो है। कोई जगाने वाला साथ में होता है तो सोने वाले को समस्या नहीं रहती! वह ठाट से सोता है और उचित अवसर पर जगा दिया जाता है।

इस माह के व्रत और त्यौहार

योगिनी एकादशी (सबका)	२ जुलाई	शनिवार
प्रदोष व्रत	३ जुलाई	रविवार
मास शिवरात्रि व्रत	४ जुलाई	सोमवार
अमावस्या	६ जुलाई	बुधवार
रथयात्रा	८ जुलाई	शुक्रवार
वैनायकी श्रीगणेश चतुर्थी	१० जुलाई	रविवार
हरिशयनी एकादशी (सबका)	१७ जुलाई	रविवार
चातुर्मास प्रारम्भ	१८ जुलाई	सोमवार
भौम प्रदोष व्रत	१९ जुलाई	मंगलवार
गुरु पूर्णिमा	२१ जुलाई	गुरुवार
संकष्टी गणेश चतुर्थी	२४ जुलाई	रविवार
श्रावण सोमवार व्रत	२५ जुलाई	सोमवार
कामदा एकादशी व्रत (सबका)	३१ जुलाई	रविवार

आगामी कथाओं के कार्यक्रम

०७.०७.२००५ से १६.०७.२००५	रामकथा	कोलकाता
२३.०७.२००५ से ०१.०८.२००५	रामकथा	वाराणसी
१०.०८.२००५ से १६.०८.२००५	भागवत	हरिद्वार
०८.०९.२००५ से १४.०९.२००५	भागवत	गोरखपुर

नोट : कथा में जाने से पहले कार्यालय से सम्पर्क करें।

'बालव्यास जी' से सम्बन्धित जानकारियाँ इंटरनेट पर भी उपलब्ध हैं।
www.balvyas.com
E-mail- contact@balvyas.com

इस माह का राशिभविष्य

मेष — लोक प्रतिष्ठा में वृद्धि, पारिवारिक सुख औद्यौगिक सफलता, द्रव्यलाभ।

वृष — नवीन योजनाओं से लाभ, कार्य क्षेत्र का विकास, भ्रमण का अवसर, गृह कलह।

मिथुन — विरोधियों में बढ़ोत्तरी, आकस्मिक हानि, चोर भय, यात्राएँ सुखद, नेत्र विकार।

कर्क — पारिवारिक अवरोध, अनियमित दिनचर्या, अनावश्यक झंझट से कष्ट, द्रव्य लाभ।

सिंह — शत्रुओं से परेशानी, मानसिक तनाव, कार्य हानि, धनलाभ, सन्तानकष्ट।

कन्या — आरोग्य लाभ, धनागम में सुधार, चल सम्पत्ति का विकास, यात्रा से लाभ।

तुला — धनकोष में वृद्धि, आवश्यक कार्यों में सफलता, बकाये धन की वापसी।

वृश्चिक — अभीष्ट कार्यों में हानि, पुत्रकष्ट, गुप्त शत्रुओं का भय, दाम्पत्यसुख।

धनु — आरोग्यसुख, रोजी-रोजगार में प्रगति, अन्न-वस्त्र सुख की प्राप्ति, द्रव्यलाभ।

मकर — मानसिक दुखों का निवारण, श्रेष्ठ विचारों का उदय, धनागम सामान्य।

कुम्भ — रोजी रोजगार में अल्प लाभ रहेगा, रोग की शिकायत, लोकापवाद का भय।

मीन — कार्यों में सफलता, स्वजनवियोग, व्यय की अधिकता, आन्तरिक शान्ति।

श्रीमद्भागवत ज्ञान-यज्ञ प्रचार समिति
२२४, आचार्य जगदीशचन्द्र बोस रोड
'कृष्णा बिल्डिंग', कमरा नं० ५११ (पाँचवाँ तल्ला)
कोलकाता- ७०००१७, ✆ ०३३-२२८००३५१

झाँकी-झरोखा
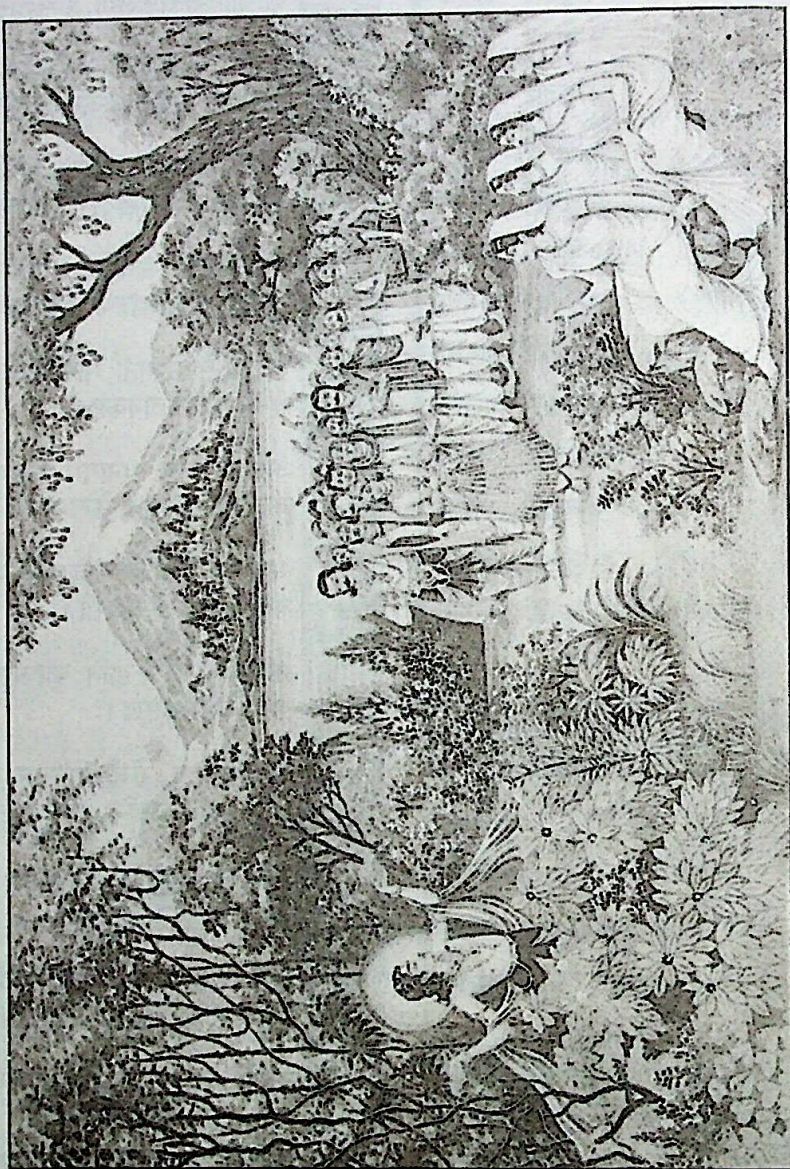
संकीर्तनोत्सव में भक्तप्रवर श्रीउद्धवजी का प्राकट्य

कुबेर के द्वारा गोकुल में स्वर्णवृष्टि

–बालव्यास पं. श्रीकांतजी शर्मा

श्री रोहिणी का यह परिश्रम देखकर ब्रजरानी की आँखों में स्नेह-जल भर आता है। सजल नेत्रों से वे कुछ क्षण रोहिणी जी की ओर देखकर फिर उन निमन्त्रित कुटुम्बी ब्रजवधुओं की ओर देखने लगती हैं। इतना संकेत पर्याप्त है। वे शतशः ब्रज वधुएँ तुरंत ही पकवान बनाने में जुट पड़ती हैं–

नन्द-घरनि ब्रज-बधू बुलाईं, जे सब अपनी पाँति।
कोउ ज्यौनार करति, करेउ घृत-पक, षटरस के बहु भाँति।।
बहुत प्रकार किए सब व्यंजन, अमित बरन मिष्ठान।
अति उज्ज्वल-कोमल-सुठि-सुंदर, देखि महरि मन मान।।

ब्रजेन्द्र का उत्साह तो देखने योग्य ही है। उनकी योजना ऐसी है कि उनके पुत्र का अन्नप्राशन-उत्सव अतीत एवं भविष्य के इतिहास में अद्वितीय बन जाय। नन्द-प्रासाद से संलग्न, कालिन्दीतीरपर्यन्त विस्तीर्ण सुमनोहर नन्दोद्यान में ब्रजेन्द्र ने एक नयी सृष्टि-सी रच दी है। उस सुरम्य उद्यान में नौ छोटी-छोटी नदियों का निर्माण हुआ है। जल की नदियाँ नहीं, विभिन्न भोज्यरसों की। पहली नदी दधि की है, उसमें दधि की धवल धारा बह रही है, दोनों तट दधि से भरपूर है। दूसरी गोदुग्ध की नदी है, निर्मल उज्ज्वल शीतल दुग्ध प्रवाहित हो रहा है। तीसरी नदी घृत की है, पीतवर्णा यह घृत-नदी मन्दगति से प्रवाहित हो रही है, दोनों किनारे घृतसिक्त हो गये हैं। चौथी गुड़ की नदी है, पीताभ गुड़की यह पयस्विनी अत्यन्त स्थिर-सी है, मानो सचमुच ही किसी नदी की पीताभ जलधारा हिम के संयोग से जम गयी हो, ऐसी इस गुड़कुल्या (गुड़ की नदी) की शोभा है। पाँचवीं तैल-नदी प्रवाहित हो रही है, मन्थरगति से धीरे-धीरे यमुना की ओर इसकी गति है। छठी नदी अत्यन्त विस्तीर्ण है, यह मधुकुल्या

है, इसमें मधुधारा बह रही है। सातवीं नवनीत-नदी है, उज्ज्वल हिमपिण्ड की भाँति नवनीतखण्ड जम-से गये हैं। अत्यन्त शान्त-सी प्रतीत हो रही है। उसका प्रवाह परिलक्षित नहीं होता। इन सात के अतिरिक्त तक्र-नदियाँ भी हैं। ये कई हैं तथा द्रुतगति से झर-झर करती हुई यमुना की ओर भागी जा रही हैं। कुछ शर्करोदक नदियाँ हैं, इनकी शर्करामिश्रित मिष्ट जलधाराएँ अत्यन्त प्रखर गति से उद्यान की परिक्रमा कर रही है।

इन नदियों के मध्यवर्ती देश में उज्ज्वल प्रस्तरखण्डों से पटी हुई भूमिपर ब्रजेन्द्र ने शालितण्डुलों के एक शत एवं पृथुतण्डुलों (चिउरों) के एक शत पर्वत बनवाये हैं। वहीं सात लवण-पर्वतों का भी निर्माण करवाया है। इसी तरह शर्करा के सात एवं लड्डू के सात पर्वत निर्मित हुए हैं। परिपक्व सुमधुर फलों के सोलह पर्वत रचे गये हैं। यवचूर्ण (जौ के आटे) तथा गोधूमचूर्ण (गेहूँ के आटे) के भी अनेक पर्वत बने हैं। मोदकों का पर्वत निर्मित हुआ है। विशेष कौशल से निर्मित, अत्यन्त सुस्वादु, एक

प्रकार की पूरियों के अनेक पर्वत खड़े किये गये हैं। इन पूरियों के पर्वतों पर राशि-राशि सुसंस्कृत लड्डू रख दिये गये हैं। इनसे कुछ हटकर ब्रजेन्द्र ने सात कौड़ियों के पर्वत बनवाये हैं। वहीं पर सुवासित जलयुक्त, कर्पूरादिमिश्रित, चन्दन-अगरु-कस्तूरी-कुंकुम-समन्वित ताम्बूलों का अत्यन्त विस्तृत, परन्तु द्वारहीन एक मन्दिर निर्माण करवाया है। विभिन्न जाति की रत्नराशि एवं सुवर्ण, सुरम्य मुक्ताफल तथा प्रवालपुञ्ज ढेर-के-ढेर यथास्थान रख दिये गये हैं। रंग-बिरंगे सुन्दर वस्त्र एवं सुन्दर आभूषणों के स्तूप लग गये हैं-

दधिकुल्यां दुग्धकुल्यां घृतकुल्यां प्रपूरिताम् ।।
गुड़कुल्यां तैलकुल्यां मधुकुल्यां च विस्तृताम् ।
नवनीतकुल्यां पूर्णां च तक्रकुल्यां यदृच्छया।।
शर्करोदककुल्यां च परिपूर्णां च लीलया।
तण्डुलानां च शालीनामुच्चैश्च शतपर्वतान् ।।
पृथुकानां शैलशतं लवणानां च सप्त च ।
सप्त शैलाञ्छर्कराणां लड्डूकानां च सप्त च ।।
परिपक्वफलानां च तत्र षोडश पर्वतान् ।
यवगोधूमचूर्णानां पक्वलड्डुकपिण्डकान् ।।
मोदकानां च शैलं च स्वस्तिकानां च पर्वतान् ।
कपर्दकानामत्युच्चैः शैलान् सप्त च नारद।।
कर्पूरादिकयुक्तानां ताम्बूलानां च मन्दिरम् ।
विस्तृतं द्वारहीनं च वासितोदकसंयुतम् ।।
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन समन्वितम् ।
नानाविधानि रत्नानि स्वर्णानि विविधानि च ।।
मुक्ताफलानि रम्याणि प्रबालानि मुदान्वितः।
नानाविधानि चारुणि वासांसि भूषणानि च ।।
पुत्रान्नप्राशने नन्दः कारयामास कौतुकात् ।

जिस आँगन में श्रीकृष्णचन्द्र अन्नप्राशन करेंगे, उसे भी ब्रजेन्द्र ने स्वयं उपस्थित रहकर सजाया है। सुमार्जित, चन्दनवारि से सर्वत्र सिक्त विशाल सुन्दर प्राङ्गण में चारों ओर से ऊँचे-ऊँचे सघन कदलीस्तम्भ खड़े कर दिये गये हैं। कदलीस्तम्भों पर यथास्थान सूक्ष्म वस्त्रों में ग्रथित आम्र-नवपल्लव टँगे हैं। स्थान-स्थान पर फल-पल्लवसमन्वित, चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-पुष्पपरिशोभित अनेक मङ्गलकलश रखे हैं। कलश के समीप पुष्प-समूहों के, चित्र-विचित्र वस्त्रों के ढेर लगे हैं। ब्राह्मणों के विराजने के लिए यथास्थान आसन एवं उनकी पूजा के लिए मधुपर्कपूरित अनेक पात्र रखे हैं तथा शत-शत स्वर्णसिंहासन दान के लिए सजा सजाकर रखे हुए हैं।

यह सारी व्यवस्था ब्रजेन्द्र ने केवल तीन पहर में की है। असंख्य गोपस्वकों को लेकर आधी रात के समय ब्रजेश्वर ने कार्य प्रारम्भ किया था। पहर दिन चढ़ते-चढ़ते सारी व्यवस्था पूर्ण हो गयी है। अब इधर रेवती नक्षत्र भी प्रारम्भ हो चुका है। शुभ योग भी आ गया है। आज चन्द्र तो मीन लग्न में अवस्थित हैं ही । ब्राह्मण भी कदलीमण्डप में पधार गये हैं। अतः अविलम्ब क्रिया आरम्भ हो जाती है।

शास्त्र-विधि का अनुसरण करते हुए ब्रजेन्द्र, ब्रजरानी दोनों ही पुनः मङ्गलस्नान करते हैं। स्वयं निवृत्त होकर फिर ब्रजेश्वरी श्रीकृष्णचन्द्र को स्नान कराती हैं, पश्चात् पूर्वाभिमुख होकर आसन पर नन्ददम्पति विराजते हैं। उस समय ब्रजरानी की गोद में श्रीकृष्णचन्द्र को देखकर ब्रजेन्द्र कुछ क्षण के लिए तो सब कुछ भूल जाते हैं। याजक भूदेवों की भी यही दशा होती है। मङ्गलगान करती हुए ब्रजाङ्गनाएँ भी श्रीकृष्णचन्द्र की वह दिव्य छवि देखकर विमुग्ध हो जाती हैं। ब्राह्मण कुछ देर बाद प्रकृतिस्थ होकर आचमन, स्वस्तिवाचन, दीपप्रज्ज्वलन, अर्घ्यस्थापन आदि सम्पन्न कराते हैं; पर उनकी मुद्रा ऐसी हो गयी है, मानो किसी गाढ़ समाधि से अभी-अभी उठे हों। ब्रजेन्द्र भी नान्दीश्राद्ध आदि सभी कर्मों का समाधान करते जा रहे हैं- किन्तु इस तरह, जैसे उनके हाथों से कोई अचिन्त्य शक्ति क्रिया करवा दे रही हो, स्वयं वे इस शरीर से कहीं अलग चले गये हों। ....क्रमशः

भरत का भ्रातृत्व, भक्ति और चरित्र

-बालव्यास पं. श्रीकांतजी शर्मा

रघुकुल की दूसरी सदस्या महारानी सुमित्रा ने भी त्याग का जो आदर्श प्रस्तुत किया है उसने विमल वंश रघुवंश की कीर्तिपताका को बहुत ऊँचा कर दिया है। वनवास के लिए आज्ञा माँगने आए अपने प्रिय पुत्र लक्ष्मण को उन्होंने जो उपदेश दिया वह संसार की नारियों के लिए एक अनुकरणीय आदर्श है तथा परिवार एवं समाज के संघटन को बनाए रखने के लिए एक सिद्ध मंत्र है। वे कहती हैं- माता, पिता, गुरु, भ्राता इन सबकी सेवा प्राण के समान करनी चाहिए। फिर राम तो प्राण के भी प्राण और जीवन के भी जीवन हैं तथा सबके स्वार्थरहित मित्र हैं। इसलिए मेरे प्रिय वत्स! सभी प्राणियों के हित चिंतक राम को पिता और सीताजी को माता जानकर उनकी सेवा में उनके साथ वन में अवश्य जाओ, क्योंकि यदि निश्चय ही राम और सीता वन को जाते हैं तो अयोध्या में तुम्हारे रहने की कोई आवश्यकता नहीं-

तात तुम्हार मातु वैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही ।।
जो पै सीय राम वन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाही।।

रघुकुल का विश्वप्रसिद्ध भ्रातृस्नेह

संसार में भाई-भाई का प्रेम कहाँ दिखाई और सुनाई देता है? कहीं नहीं। हाँ, दिखाई और सुनाई देता है तो यह कि भाई का सबसे बड़ा शत्रु भाई ही होता है। भाई-भाई के बीच परस्पर की यह कटुता ही परिवार विघटन का कारण है और इसका कुप्रभाव परिवार, परिवार से जुड़े समाज पर भी पड़ता है। वास्तव में भारतीय चिंतन के आधार पर परिवार एक
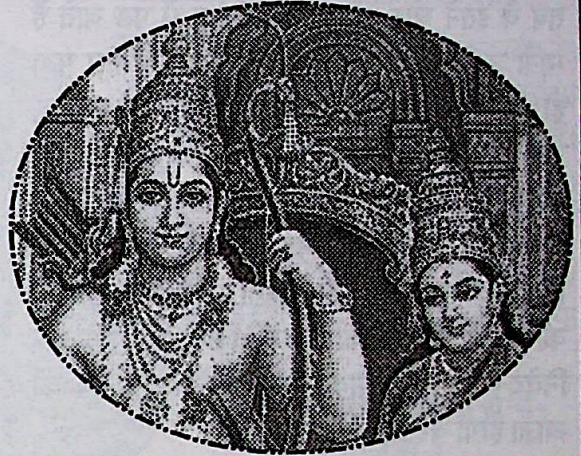
पाठशाला है, जहाँ व्यक्तित्व-निर्माण की शिक्षा मिलती है और जहाँ से शिक्षित एवं संस्कारित होकर निकले व्यक्तियों से बना समाज ही एक सबल तथा वैभवशाली राष्ट्र का आधार होता है। चिंतन के इसी परिप्रेक्ष्य में भारत के मनीषियों ने एक सुसंगठित आदर्श परिवार के निर्माण के लिए षोडससंस्कार विधि के पालन का निर्देश दिया है। साथ ही परिवार के प्रत्येक सदस्य का क्या कर्तव्य व धर्म होना चाहिए, उसकी मर्यादा भी स्थापित कर दी है। इन शास्त्रसम्मत विधियों का पूर्णतः पालन रघुकुल के परिवार में दिखाई देता है और इसी परिवार को आदर्श मानकर भारत के सारे परिवार उसका अनुकरण करते हैं।

अतः संसार में कहीं भाई-भाई का सहज दिव्य प्रेम देखना हो तो भारत के प्रसिद्ध रघुवंश में पैदा हुए राम-लक्ष्मण-भरत और शत्रुघ्न इन भाइयों के चरित्र को देखना चाहिए।

भरत का भ्रातृत्व, भक्ति और चरित्र

जिस भरत को राजा बनाने के लिए उनकी माता कैकेयी ने राम को वनवास की आज्ञा दी, वही भरत जब भइया राम के वनवास का समाचार सुनते हैं, तब वे इतने घोर-संकट और चिंता में पड़ जाते हैं मानो उनके ऊपर विपत्तियों का पहाड़ ही गिर पड़ा हो। गुरुवर वशिष्ठ, माता कौशल्या और मंत्री सुमन्त्र, जब भरत को राजसिंहासन पर आरूढ़ होने के लिए आज्ञा देते हैं, तब भरत ने जो उत्तर दिया, उसमें सचमुच उनके भ्रातृत्व स्नेह की परम दिव्यता प्रगट होती है। वे कहते हैं– मैं चाहता हूँ कि आप गुरुजनों की आज्ञा को स्वीकार करूँ, किन्तु मेरा भी एक निवेदन है, उसे सुनकर फिर जैसी आप सब की आज्ञा होगी वैसा ही करूँगा–

मोहि उपदेस दीन्ह गुरु नीका।
प्रजा सचिव सम्मत सब ही का ।।
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा।
अवसि सीस धरि आयसु कीन्हा ।।

उक्त प्रसंग के सम्बन्ध में भरत जी आगे कहते हैं– पिता, महाराज दशरथ जी स्वर्ग सिधार गये और भइया राम, माता सीता और प्रिय भाई लक्ष्मण कठोर वनवास का जीवन व्यतीत कर रहे हैं, ऐसी स्थिति में आप सब मुझे राज्य करने के लिए कह रहे हैं, तो क्या इसमें आप सब मेरा कल्याण समझते हैं? अथवा क्या आप सब अपना कोई बहुत बड़ा काम होने की आशा रखते हैं? अरे! मेरे राजा होने से किसी का कल्याण नहीं है, क्योंकि जिसके कारण राम-सीता और लक्ष्मण वन में दुःसह दुःख भोगते हों, ऐसा मेरे समान पापात्मा संसार में कौन होगा? इसलिए मैं सत्य कहता हूँ, आप सब विश्वास करें, राजा धर्मशील व्यक्ति को बनाना चाहिए, यदि आप सब हठ करके मुझे जैसे ही राजा बना देंगे, वैसे ही मेरे पापों के कारण यह पृथ्वी रसातल में चली जायेगी–

पितु सुरपुर सिय राम वन, करन कहहु मोहि राजु।
एहि ते जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काज ।।
मोहि समान को पाप निवासू।
जेहि लगि सीय राम वनवासू।।
कहहुँ साँचु सब सुनि पतिआहू।
चाहिअ धरम सील नरनाहू।।
मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं।
रसा रसातल जाइहि तबहीं।।

यहाँ भरत जी परिवार और समाज के लिए एक बहुत ही व्यावहारिक आदर्श को स्थापित करते हैं। वे मिले हुए अधिकार को भी त्याग कर, मानो संकेत करते हैं कि अधिकार नहीं, कर्तव्य की प्रधानता को स्वीकार करना चाहिए। क्यों? क्योंकि परिवार और समाज की सारी लड़ाई, अधिकार के लिए ही तो होती है। अतः सुन्दर और स्वस्थ परिवार और समाज के निर्माण के लिए मात्र अधिकार ही नहीं प्रत्युत् कर्तव्य-भाव, सेवा-भाव के प्रति भी निष्ठा होनी चाहिए। चिंतन के इसी परिप्रेक्ष्य में भरत जी गुरुजनों से निवेदन करते हुए कहते हैं– मेरा कल्याण तो भैया राम की सेवा करने में है, इसके लिए मुझे कोई उपदेश नहीं देता, जबकि वनवास काल की अवधि तक मेरा राज्याधिकारी होना मेरे लिए महा अमंगल है, फिर उस अमंगल में आप सबको मंगल दिखाई देता है- यह कैसी विडम्बना है? वास्तव में इस प्रकार विपरीत उपदेश देने वालों का कोई दोष नहीं, दोष तो मेरे भाग्य का है। वही मेरा भाग्य आज विपरीत हो गया है, अर्थात् आज मेरा सब प्रकार से कुसमय आ गया है।

.......क्रमशः

शिवोपासना में 'शाम्भवी विद्या' का रहस्य

—बालव्यास पं. श्रीकांतजी शर्मा

'शिवोपासना' विश्व की अति प्राचीन उपासना है। इस उपासना में 'शाम्भवी विद्या' को अत्यन्त गोपनीय रखने का आदेश है। इस विद्या के मूल उपदेष्टा भगवान् शम्भु हैं, इसलिये यह 'शाम्भवी विद्या' कहलाती है। 'स्वयंबोध अमनस्क योग' नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि –

गुह्याद् गुह्यतरा विद्या न देया यस्य कस्यचित् ।
एतद्ज्ञानं वसेद् यत्र स देशः पुण्यभाजनम् ।।

अर्थात् 'यह (शाम्भवी विद्या) गुह्य से भी गुह्यतर विद्या है। इसे किसी सामान्य व्यक्ति को नहीं देनी चाहिए। (परीक्षा करके किसी योग्य अधिकारी को ही देना चाहिए) यह ज्ञान जहाँ रहता है, वह देश (देह) पुण्यदेश है और वह जन पुण्यात्मा है।'

दर्शनात् स्पर्शात् तस्य त्रिसप्तकुलसंयुताः।
जना मुक्तिपदं यान्ति किं पुनस्तत्परायणाः।।

अर्थात् 'सिद्धशाम्भवी-विद्यावाले महात्मा के दर्शन और स्पर्श से मनुष्य इक्कीस कुलों के साथ मुक्तिपद को प्राप्त कर लेते हैं। फिर उस देश के निवासी या उनके सेवकों की तो बात ही क्या है?'

'शाम्भवी विद्या' के विषय में रहस्योद्घाटन करते हुए कहा गया है कि–

अन्तर्लक्षबहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मे-
षवर्जिता ।
एषा हि शाम्भवी मुद्रा सर्वसास्त्रेषु
गोपिता ।।

अर्थात् 'यह शाम्भवी विद्या (मुद्रा) अन्तर्लक्षवाली, बहिर्दृष्टिवाली और निमेष-उन्मेष से शून्य है। अर्थात् शाम्भवी मुद्रा में बहिर्दृष्टि होने पर भी अन्तर्लक्ष होता है और दृष्टि में निमेष और उन्मेष नहीं होते। यह सर्वशास्त्रों में गोपित है।'

'शाम्भवी विद्या' 'आदिशक्ति उमास्वरूपिणी' कही गयी है और 'शम्भु से आविर्भूता' बतायी गयी है–

आदिशक्तिरूपा चैषा मत्तो जन्मवती पुरा।
अधुना जन्मसंस्कारात् त्वमेको लब्धवानसि।।

आगे कहा गया है कि 'जैसे पूल फल का प्रकाशक हैं, फल फूल का विनाशक है। जैसे मूढ़मति गड़रिया बकरी के बच्चे के बगल में रहते हुए भी मूढ़तावश कुएँ में झाँकता फिरता है, वैसे ही मूढ़ पुरुष अपने में स्थित 'तत्त्व' को न जानकर

अन्य शास्त्रों में मोह को प्राप्त होते हैं, व्यर्थ शास्त्रों में भटकते हैं।'

इस 'शाम्भवी विद्या' को सिखाने-समझानेवाले 'समर्थ सद्गुरु' के विषय में कहा है कि-

दृष्टिः स्थिरा यस्य विनैव दृश्यं
वायुः स्थिरो यस्य बिना प्रयत्नम् ।
चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बं
स एव योगी स गुरुः स सेव्यः ।।

अर्थात् 'दृश्य के बिना ही जिसकी दृष्टि स्थिर हो जाए, बिना किसी प्रयत्न के जिसके प्राण स्थिर हो जाएँ, बिना किसी अवलम्बन के जिसका चित्त स्थिर हो जाय, वही (यथार्थ में) 'योगी' है, वह 'गुरु' होने योग्य है, उसकी ही सेवा करनी चाहिए।'

ऐसे गुरु 'भगवान् शम्भु' के सिवा अन्य कौन हो सकते हैं? इसीलिए तो ऐसे 'गुरु' को नमस्कार करते हुए कहा गया है कि –

नमोऽस्तु गुरवे तुभ्यं सहजानन्दरूपिणे ।
यस्य वाक्यामृतं हन्ति संसारमोहनाभयम् ।।

अर्थात् सहजानन्दरूपी आप गुरु के लिए नमस्कार है, जिनका वाक्यरूपी अमृत संसार-मोहरूपी व्याधि का विनाश करता है, ऐसे समर्थ 'सद्गुरु' का अनुग्रह प्राप्त करके-

विविक्ते विजने देशे पवित्रेऽतिमनोहरे ।
समासने सुखासीनः पश्चात् किंचित् समाश्रयेत्।।
सुखस्थापितसर्वाङ्गः सुस्थिरात्मा सुनिश्चियः ।
बाहुदण्डप्रमाणेन कृतदृष्टिः समभ्यसेत् ।।

अर्थात् पवित्र निर्जन मनोहर प्रदेश में सम-आसन पर पीछे की ओर तनकर सुखपूर्वक आसीन हो तथा सुख से सब अङ्गों को यथास्थान स्थापित कर, सुस्थिर-चित्त और निश्चल होकर एक हाथ तक आगे की ओर दृष्टि लगाकर अभ्यास करे। ऐसा ही मार्गदर्शन श्रीमद्भागवद्गीता में दिया गया है और पातञ्जलयोगसूत्र में भी कहा गया है कि 'स्थिरसुखमासनम्'

धीरे धीरे अभ्यास के स्थिर हो जाने पर फिर न कोई विधि रहती है और न कोई क्रम रहता है। तब चिन्तन-शून्यता की स्थिति रहती है। कुछ भी चिन्तन न करने से तत्त्व स्वयं प्रकाश में आ जाता है–

न किंचिच्चिन्तनादेव स्वयं तत्त्वं प्रकाशते।।

ऐसा ही श्रीमद्भागवद्गीता में भी कहा गया है–

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्धया धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ।।

अर्थात् 'क्रम-क्रम से अभ्यास करता हुआ उपरामता को प्राप्त होवे तथा धैर्यमुक्त बुद्धि द्वारा मन को परमात्मा में स्थित करके परमात्मा के सिवाय कुछ भी चिन्तन न करे।'

'शाम्भवी विद्या' के अभ्यासी को 'चित्त' को बाहर में एवं भीतर में शनैः-शनैः स्थिर करने की प्रक्रिया सिखायी जाती है। कहा है कि 'चित्ते चलति संसारोऽचले मोक्षः प्रजायते।' अर्थात् 'चित्त के चञ्चल होने पर संसार का भान होता है और निश्चल होने पर मोक्ष का उदय होता है।' मन के विषय में कहा है कि 'मन ही मनुष्यों के बन्धन एवं मोक्ष के हेतु है, विषयों में आसक्त मन 'बन्धन' के और निर्विषय मन 'मुक्ति' के लिए कारण होता है।' भागवद्गीता भी ऐसा ही कहती है–

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।

वैसे तो शाम्भवी विद्या या मुद्रा का वर्णन अमनस्कयोग, घेरण्डसंहिता, शिवसंहिता, गोरक्षसंहिता, हठयोगप्रदीपिका तथा अभिनवगुप्त-पादाचार्य के अनेक ग्रन्थों में प्राप्त होता है, किन्तु अधिकांश स्थानों में उसका वर्णन प्रायः एक ही समान प्राप्त होता है, जिसके कुछ मुख्य श्लोक

जिनमें शाम्भवी विद्या का स्पष्ट भाव दिया गया है, यहाँ दिये जा रहे हैं। हठयोगप्रदीपिका में कहा गया है–

अन्तर्लक्ष्य बहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जिता।
एषा सा शाम्भवी मुद्रा वेदशास्त्रेषु गोपिता ।।

अर्थात् 'जिसमें भीतरी लक्ष्य (पर मन स्थिर) हो तथा पलकों के खुले और बंद हुए बिना नेत्र स्थिर रहे– निमेषोन्मेष से रहित बाह्य दृष्टि हो, वही शाम्भवी मुद्रा है। यह वेदादिशास्त्रों में अच्छी तरह गुप्त– सुरक्षित है।'

यह मुद्रा शिवप्रिया– शिवाविर्भावकारिणी है। इसकी साधना से साधकों को शिव का साक्षात्कार होता है।

अन्तर्लक्ष्यविलीनचित्तपवनो योगी यदा वर्तते ।
दृष्ट्या विश्चलतारया बहिरधः पश्यन्नपश्यन्नपि।
मुद्रेयं खलु शाम्भवी भवति सा लब्धा प्रसादाद् गुरोः
शून्याशून्यविलक्षणं स्फुरित तत्तत्त्वपरं शाम्भवम् ।।

इस श्लोक का भाव यह है कि योगी की बाह्य मनोवृत्तियाँ विलीन होकर अन्तर्हृदय में स्थित परमात्मा में सर्वथा एकाग्र हो जायँ और नेत्रों की तारिकाएँ प्रायः स्थिर-सी होकर बाह्य जगत् को देखती हुई भी उन्हें बाह्य जगत् का भाव न हो अथवा बाह्य जगत् में भी एकमात्र उसी परमात्मा का भाव हो। इस शाम्भवी विद्या या मुद्रा की प्राप्ति गुरु (परम गुरु शिव) के परम प्रसाद से ही सम्भव है। परम शाम्भव तत्त्व जो शून्य-अशून्य से परे- विलक्षण है। इस मुद्रा की प्राप्ति-सिद्धि होने पर स्फुरित होता है। इसे ही शिव-साक्षात्कार या परमात्मा प्राप्ति मानना चाहिये। घेरण्डसंहिता में भी कहा गया है कि शाम्भवी विद्या या मुद्रा को जानने वाला ब्रह्मस्वरूप–शिवस्वरूप ही हो जाता है। •

राजा महाभिष और गङ्गा जी को ब्रह्माजी का शाप

—बालव्यास पं. श्रीकांतजी शर्मा

महातेजस्वी व्यास एवं सत्यवती के जन्म की कथा का आपने वर्णन किया। फिर भी हमारा एक प्रश्न तो शेष रह ही गया। जिन्हें आपने व्यास की माता कहा है, वे कल्याणी सत्यवती महान् धर्मज्ञ राजा शांतनु को कैसे प्राप्त हुईं? सत्यवती निषाद की पुत्री थीं। वेष-भूषा से भी वे अच्छी नहीं थी फिर पुरुवंशी धर्मात्मा राजा शांतनु ने उन्हें स्वयं कैसे स्वीकार कर लिया? राजा शांतनु की पहली स्त्री कौन थी, जिससे बुद्धिमान् भीष्म का जन्म हुआ था तथा भीष्मजी वसु के अंश क्यों कहे जाते हैं, यह बताने की कृपा कीजिए। आपके मुखारविन्द से निकल चुका है, भीष्मजी अपार तेजस्वी थे। उन्होंने सत्यवती के शूरवीर पुत्र चित्राङ्गद को राजगद्दी पर अभिषिक्त कर दिया। चित्राङ्गद के मर जाने पर उसके छोटे भाई सत्यवती कुमार विचित्रवीर्य को राजा बना दिया। राजा शांतनु के भीष्म जी बड़े पुत्र थे। भीष्म जी का धार्मिक विचार था। वे बड़े सुन्दर थे। उनके रहते छोटा पुत्र गद्दी का अधिकारी बनकर राज्य कैसे करने लगा ? राजा कोई अनभिज्ञ पुरुष तो थे नहीं। विचित्रवीर्य की मृत्यु हो जाने पर अत्यन्त शोकाकुल होकर सत्यवती ने पुत्रवधुओं से क्यों दो गोलक पुत्र उत्पन्न करवाये ? उन कल्याणी ने भीष्मजी को ही राजगद्दी क्यों नहीं सौप दी? वीरवर भीष्मजी के विवाह न करने का क्या कारण है? महाभाग! हमारे संदेह को दूर कर देना आपके लिए कोई बड़ी बात नहीं है। हम सभी अन्य कार्यों का परित्याग करके सुनने की इच्छा से ही इस धर्मक्षेत्र में उपस्थित हुए हैं।
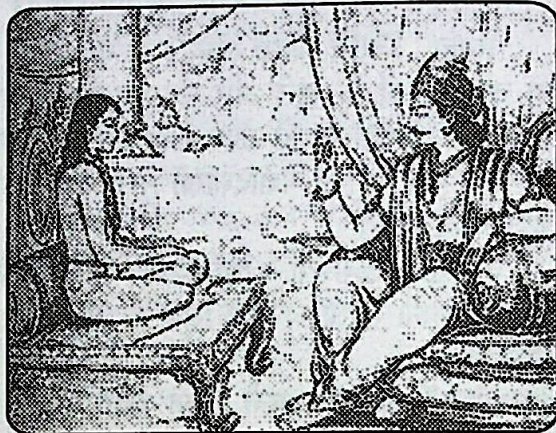
इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न एक महाभिष नामक राजा विख्यात हो चुके हैं। वे बड़े सत्यवादी, धर्मात्मा और चक्रवर्ती नरेश थे। उन्होंने एक हजार अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ करके देवराज इन्द्र को प्रसन्न किया। फलस्वरूप वे स्वर्ग के अधिकारी बने। एक समय की बात है– राजा महाभिष ब्रह्माजी के भवन पर गये थे। प्रजापति ब्रह्माजी की सेवा में सभी देवता वहाँ पधारे हुए थे। लोकपितामह की सेवा में महानदी देवी गङ्गा भी वहाँ उपस्थित थीं। बड़े वेग से हवा चली, जिससे गङ्गाजी का वस्त्र इधर-उधर खिसक गया। उपस्थित सभी देवताओं ने गङ्गाजी की ओर दृष्टि न डालकर अपने मस्तक नीचे कर लिये। किन्तु राजा महाभिष निर्भीकतापूर्वक उधर ताकते रहे। बुद्धिमती गङ्गा भी उन नरेश की ओर नजर फैलाये रहीं। दोनों प्रेम-पाश में बँध चुके थे। उन्हें देखकर ब्रह्माजी को क्रोध आ गया। उन्होंने शाप दे दिया– 'राजन् ! तू मर्त्यलोक में जाकर जन्म ले। वहाँ जब तू बहुत पुण्य करेगा, तब उसके फलस्वरूप फिर

तुझे स्वर्ग में रहने की सुविधा मिलेगी। राजा की ओर प्रेमपूर्वक देखते रहने के कारण गङ्गा को भी ब्रह्माजी ने वैसा ही शाप दिया। अब वे दोनों उदास होकर ब्रह्माजी के पास से चल पड़े। उस समय महाभिष ने मर्त्यलोक के धर्मात्मा राजाओं के विषय में विचार किया। अन्त में पुरुवंशी राजा प्रतीप के घर जन्म लेने की बात उन्हें जँची। इसी समय आठों वसु अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ वशिष्ठजी के आश्रम पर आये थे। उन्हें इच्छानुसार भोग-विलास करने की सुविधा प्राप्त थी। पृथु आदि आठ वसु थे। उनमें द्यौ नामक एक प्रधान वसु था। वहाँ द्यौ की स्त्री ने नन्दिनी गौ को देखा। देखकर उसने अपने पति द्यौ से पूछा-'यह उत्तम कामधेनु गौ किसकी है?' द्यौ ने उत्तर दिया- 'सुन्दरी! यह उत्तम गौ वशिष्ठ जी की है। स्त्री अथवा पुरुष- कोई भी हो, यदि उसे इस गाय का दूध पीने का अवसर मिल जाय तो वह निश्चय ही दस हजार वर्ष तक जी सकता है और उसकी जवानी सदा स्थिर रह सकती है।' यह बात सुनकर द्यौ की सुन्दरी स्त्री ने कहा- 'मेरी एक सखी मर्त्यलोक में रहती है। वह राजर्षि उशीनर की पुत्री है। वह अनुपम सुन्दरी है। महाराज! आप उसी मेरी सखी के लिए इस पुण्यमयी एवं इच्छानुसार दूध देने वाली नन्दिनी गौ को बछड़े सहित अपने उत्तम आश्रम पर ले चलिए और जब तक मेरी वह सखी इस गौ का दूध न पी ले, तब तक वहीं रखिये। ऐसा होने पर वह सखी मानव-समाज में प्रथम श्रेणी की होकर रहेगी। उसे बुढ़ापा और रोगों का सामना नहीं करना पड़ेगा।' यद्यपि द्यौ के मन में पापभावना नहीं थी, फिर भी स्त्री की बात सुनकर उसने मनोनिग्रही मुनिश्वर वशिष्ठजी का अपमान करके उस नन्दिनी गौ को चुरा लिया। उस कार्य में पृथु आदि सभी वसु सहायक थे। नन्दिनी का अपहरण हो जाने के पश्चात् महान् तपस्वी वशिष्ठ जी फल-फूल लेकर अपने आश्रम पर आये। आते ही उनकी गौ की ओर दृष्टि गयी। उन्हें अपने आश्रम पर गाया एवं बछड़ा दोनों ही नहीं दिखाई पड़े। वे तेजस्वी मुनि गुफाओं और वनों में भी उस गौ को खोजने लगे। जब उन्हें कहीं भी गौ न मिली, तब उन्होंने ध्यान लगाकर देखा तो उन्हें ज्ञात हो गया कि वसुगण मेरा अपमान करके गौ को चुरा ले गये हैं। तब वे बोले कि 'इस अपराध से उन सभी वसुओं को मनुष्य-योनि में जन्म लेना पड़ेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है'- यों स्वयं वशिष्ठ जी ने वसुओं को शाप दे दिया। यह सुनकर वसुओं का मन खिन्न हो गया। हमें शाप हो गया है- यह जानकर वे ऋषि के पास पहुँचे और मुनि को प्रसन्न करते हुए उनकी शरण ग्रहण की। तब सामने खड़े हुए उन दयनीय वसुओं से धर्मात्मा वशिष्ठ जी ने कहा- 'तुम सब तो एक वर्ष के बाद शाप से छूट जाओगे, किन्तु जिसने मेरी उस प्यारी नन्दिनी का अपहरण किया है, उस द्यौ नामक वसु को बहुत दिनों तक मानवयोनि में रहना पड़ेगा।' शापग्रस्त हो जाने के पश्चात् वसुओं ने देखा, नदियों में श्रेष्ठ गङ्गाजी रास्ते में जा रही थीं। शाप के कारण गङ्गाजी का मन भी अत्यन्त उदास था। वसुओं ने नम्रतापूर्वक उनसे कहा- 'देवी! हम सभी अमृतभोजी देवता मर्त्य-लोक में कैसे उत्पन्न होंगे? हमें मनुष्यों के उदर में जन्म लेना पड़े, यह तो बड़ी चिन्ता की बात है। अतएव सरिताओं में सुप्रसिद्ध गङ्गाजी! आप ही मनुष्य होकर हमारी जननी बनने की कृपा करें। कल्याणी! शांतनु नाम से प्रसिद्ध जो राजर्षि हैं, उन्हें आप पतिदेव बना लें। फिर हमें उत्पन्न होते ही आप जल में फेंक दीजियेगा।' गङ्गाजी ने स्वीकृति दे दी। फिर वे सभी वसुगण अपने-अपने लोक को चले गये। देवी गङ्गा भी वहाँ से चल पड़ीं। उनके मन में बार-बार विचार उठ रहा था।

वासुदेव सर्वम्

गतांक से आगे ......

—स्वामी रामसुखदास जी

यह क्षेत्र विकारों के सहित संक्षेप में कहा गया है। जैसे क्षेत्र दृश्य है, वैसे ही क्षेत्र में होने वाले विकार भी दृश्य ही है, अपना स्वरूप नहीं। इस प्रकार विकारों को अपने से पृथक अनुभव करने पर अविवेकपूर्वक होने वाले विकार मिट जाते हैं।

तीसरे श्लोक में 'क्षेत्र का स्वरूप' और जिन विकारों वाला के मध्य में 'जिस स्वभाव वाला' कहा गया है, उस क्षेत्र का स्वभाव 'जयतेऽस्ति विपरिणमते वर्धतेऽपक्षीयते विनश्यति'– अर्थात् १. उत्पत्ति, २. स्थिति, ३ रूपान्तर होना, ४. वृद्धि, ५. घटना, ६ मर जाना– इन छः विकारों से युक्त कहा गया है। तृतीय श्लोकगत 'यादृक्' पद को यहाँ 'सविकारम्' पद के अन्तर्गत समझ लेना चाहिए।

जैसे 'इदं शरीरम्' कहकर व्यष्टि से पृथक देखने के लिए भगवान् का संकेत है, वैसे ही 'दृश्य' से द्रष्टा को पृथक् दिखाने के लिए ही 'एतत्' पद का प्रयोग हुआ है। तात्पर्य यह है कि व्यष्टि की समष्टि प्रकृति के साथ एकता है और क्षेत्र की परमात्मा के साथ एकता है।

विशेषार्थ–

५वें श्लोक में 'महाभूतान्यहंकारः' आदि पदों से समष्टि अन्तःकरण या अहंकार का वर्णन है। फिर छठे श्लोक में इच्छा, द्वेष आदि पदों से व्यष्टि का वर्णन है। इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख के स्थूल रूप वैर, ईर्ष्या, घृणा एवं क्रोध– ये व्यष्टि अन्तःकरण में ही होने वाले विकार हैं। इसलिए यहाँ समष्टि से पृथक रखकर इनका वर्णन किया गया है।

इच्छा, द्वेष, सुख और दुःख– ये चार विकार चित्-जड़ की ग्रन्थि के कारण अन्तःकरण में अविवेक से उत्पन्न होते हैं। उस ग्रन्थि का भेदन होने से अर्थात् वास्तविक ज्ञान होने पर 'इच्छा-द्वेषादि' रूप चारों विकार सर्वथा मिट जाते हैं एवं शरीर के साथ तादात्म्य न रहने से 'संघात, चेतना और घृति'-रूप तीनों विकारों से भी अपना सम्बन्ध नहीं रहता; क्योंकि चेतन सदैव निर्विकार है, उसमें कभी किसी प्रकार की विकृति नहीं होती। विकृति केवल जड़ अंश में ही होती है। अतः अविवेक के कारण प्राणी पदार्थों में राग-द्वेषादि होने से प्राणी 'मेरे में विकार हुए'– ऐसा मानता है, उस समय भी विकार-क्षेत्र में ही हुआ मानना चाहिए; क्योंकि क्षेत्रज्ञ के वास्तविक स्वरूप में कोई विकार नहीं है।

यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने की है कि 'क्षेत्र में

ही विकार होते हैं– स्वरूप में नहीं, केवल इतना सीख लेने मात्र से विकारों का अभाव नहीं होता; अर्थात् दुःख संताप, जलन आदि सर्वथा नहीं मिटते, जड़-चेतन की भिन्नता का वास्तविक अनुभव होने पर ही इनका सर्वथा अभाव होता है, 'परं दृष्ट्वा निवर्तते' पदों से भी इसी बात का लक्ष्य है।

शरीर को 'मैं', 'मेरा' अथवा 'मेरे लिए' मानने से ही मनुष्य के अन्तःकरण में 'इच्छा-द्वेषादि' चारो विकार उत्पन्न होते हैं एवं उसकी प्रवृत्ति और निवृत्ति के लिए होने वाली चेष्टाएँ इच्छा और द्वेषपूर्वक होती है; किन्तु जिन्हें बोध हो गया है, उन महापुरुषों को इन चारों विकारों का सर्वथा अभाव होने पर, नित्य-निर्विकार वास्तविक स्वरूप का अनुभव हो जाता है। इसीलिए उन्हें 'समदुःखसुखःस्वस्थः' अर्थात् वास्तविक स्वरूप में स्थित कहा गया है। जब तक किसी भी शरीर के साथ मनुष्य अपना सम्बन्ध मानता है, तब तक उसे 'प्रकृतिस्थः' अर्थात् प्रकृति के गुणों को भोगने वाला विकारी कहा जाता है, 'स्वस्थ' नहीं।

स्वरूप में स्थित महापुरुष के शरीर द्वारा प्रवृत्ति और निवृत्ति के लिए चेष्टाएँ तो होती हैं परन्तु वह प्रवृत्ति-निवृत्ति राग-द्वेषपूर्वक नहीं होती। उसकी प्रवृत्ति-निवृत्ति प्रारब्धानुसार, भगवान् की प्रेरणानुसार और उसके सम्पर्क में आनेवाले प्राणी के प्रारब्ध और भाव के अनुसार होती है।

महापुरुष की प्रवृत्ति-निवृत्ति दोनों में ही राग-द्वेष नहीं रहते। उसके कहे जानेवाले शरीर, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि के अनुकूल एवं प्रतिकूल प्राणी, पदार्थ, घटना अथवा परिस्थिति के संयोग-वियोग होने पर उनके निमित्त से होने वाले सुख-दुःख अर्थात् हर्ष-शोक यत्किंचित् भी उसके अन्तःकरण में नहीं होते। क्योंकि प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दोनों से सम्बन्ध-विच्छेद होकर वास्तविक निवृत्ति होने के कारण नाशवान् पदार्थों के माने हुए संयोग-वियोग का सर्वथा अभाव हो जाता है। हाँ, शरीर रहने तक अनुकूलता-प्रतिकूलता का ज्ञान उसे भी होता है, जबकि साधारण मनुष्य में अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति का ज्ञान एवं उनके निमित्त से होने वाले हर्ष-शोकरूप विकार-दोनों होते हैं।

इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि प्रवृत्ति-निवृत्ति में राग और द्वेष तथा अनुकूलता-प्रतिकूलता की प्राप्ति में उनके निमित्त से होने वाले हर्ष और शोक– ये ही वास्तव में विकार हैं। अतः इन्हीं का त्याग करना है। प्रवृत्ति-निवृत्ति तथा अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति का ज्ञानमात्र विचार नहीं है। ऐसी प्रवृत्ति-निवृत्ति एवं अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति का ज्ञान जीवमुक्त महापुरुष में भी रहता है।

जीवमुक्त महापुरुष का संघात अर्थात् शरीर से यत्किंचित् भी 'मैं-मेरे का सम्बन्ध न रहने के कारण एवं एकमात्र परमात्मा से अभिन्नता का अनुभव होने के कारण उनका कहा जाने वाला संघात यद्यपि महान् पवित्र हो जाता है, तथापि वास्तविक ज्ञान होने पर उनका यह संघात रहता ही है।

तत्त्वज्ञ महापुरुष की अन्तःकरण से तद्रूपता न रहने के कारण 'चेतना' और 'धृति'-रूप विकारों से भी उसका सम्बन्ध नहीं रहता।

सम्बन्ध– क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के स्वरूप को केवल पढ़ने-सुनने से ही देहाभिमान विलीन नहीं होता अर्थात् अपने शरीर से पृथकता का अनुभव नहीं होता। परमात्मा की प्राप्ति के उद्देश्य से ज्ञान के साधनों को अपनाने से, उनके अनुसार जीवन बनाने से ही देहाभिमान विलीन होता है। यहाँ कारण है कि भगवान् देहाभिमान विलीन करने के लिए आवश्यक बीस साधनों का यहाँ 'ज्ञान' के नाम से पाँच श्लोकों में वर्णन करते हैं।

.......क्रमशः

मिटे हर भेद

रंग दो
कण-कण को रंग दो
कोई ऐसा रंग रंग दो
सब रंग पड़ जाएँ फीके
सब रंग हो जाएँ उसी के
रह जाएँ एक ही रंग
मिटे हर बदरंग
उठे ऐसी तरंग
जो गहरे उतर जाए
जो अवतल को छू जाए
हिमालय को भी-
गले से लगा जाएँ
पर रहे शांत
पूर्ण प्रशांत
कुछ भी न हो दुखांत
रंगो का शृंगार
छेड़े ऐसा मल्हार
महके द्वार-द्वार
मिटे हर भेद
प्रगट हो
एकात्व का पारावार

— नरेन्द्र मोहन

कन्हैया-कन्हैया पुकारा करेंगे

कन्हैया-कन्हैया पुकारा करेंगे ।
लताओं में ब्रज की गुजारा करेंगे ।।
कहीं तो मिलेंगे वो बाँके बिहारी ।
उनके चरणों में चित्त को लगाया करेंगे ।।
बनायेंगे हृदय में हम प्रेम मन्दिर ।
उन्हीं से सदा लौ लगाया करेंगे ।।
उन्हें प्रेम डोरी से हम बाँध लेंगे ।
तो फिर कैसे वो भाग जाया करेंगे ।।
जिन्होंने छुड़ाये हैं गज के वो बन्धन ।
वही मेरे संकट मिटाया करेंगे ।।
जो रूठेंगे हम से वो बाँके बिहारी ।
चरण पड़ उन्हें हम मनाया करेंगे ।।
उन्होंने तो ब्रह्माण्ड सारे नचाये ।
मगर अब उन्हें हम नचाया करेंगे ।।
भजोगे जहाँ प्रेम से उनको निशदिन ।
कन्हैया छवि को दिखाया करेंगे ।।

कन्हैया-कन्हैया पुकारा करेंगे......

गड़ा धन बता, झगड़ा मिटे। अपने को मिटा, झगड़ा मिटे

-बालव्यास पं. श्रीकांतजी शर्मा

साधारणतया व्यक्ति ऐसा ही सोचा करता है कि यदि उसे कोई गड़ा हुआ खजाना हाथ लग जाये तो उसके दुःखों का अन्त आ जाये। स्थूल के आकर्षण के कारण ही व्यक्ति की ऐसी भावना बन जाती है। अभी उसे मालूम नहीं कि सुख-दुःख तो मान्यता से उपजते हैं। जब व्यक्ति की भावना स्थूल से ऊपर उठती है तभी उसे अपनी पूर्वावस्था का ज्ञान होता है।

जो कुछ आज प्राणी को प्राप्त है उसमें उसे यदि सन्तोष नहीं तो यही कहना होगा कि अभी सन्तोष धन का उसके जीवन में अभाव है। ऐसा असन्तोषी प्राणी चाहे कुछ भी क्यों न पा ले उसकी तृष्णा उसे प्राप्त सब कुछ का आनन्द नहीं लेने देती। अभाव की भावना को चूँकि वहाँ प्रश्रय मिल जाता है अतः और-और की रट वहाँ बनी ही रहती है।

जीवन से झगड़ा तब विदा होता है जब प्राणी अपने अन्तर में गड़े धन की प्राप्ति के लिए विकल होता है। सरसरी तौर से देखने पर अन्तर में धन के दर्शन नहीं होते क्योंकि वृत्तियों के बाहर चक्कर काटते रहने के कारण व्यक्ति धूल-धूसरित होता रहता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि में लिपटा हुआ व्यक्ति प्रेम व शान्ति के लिए तरस जाता है। शरीर की अवस्था से ऊपर उठना तब ऐसा कठिन कार्य लगता है कि जिसकी कल्पना भी नहीं रहती।

जीवन के कष्टों व परेशानियों का अन्त तब मनुष्य मौत के रूप में देखा करता है। उसकी यही सोच रहती है कि मरने के पश्चात् समस्त झंझटों से व्यक्ति को मुक्ति मिल जाती है किन्तु समझना यों है कि यदि व्यक्ति दुःखी व चिन्तित अवस्था में सोता है तो जब वह सोकर उठेगा तो उसकी वह भावना व उसका द्वन्द भी उसके साथ रहते ही हैं, उससे तब व्यक्ति मुक्त नहीं हो पाता। संसार से महाप्रस्थान तभी सम्भव है जब मनुष्य जीते जी शरीर की भावना से ऊपर उठ पाये अर्थात् उसका 'मैं' पूर्णतया विलीन हो जाये। इसके पूर्व चूँकि व्यक्ति 'मैं' के साथ जीता है अतः शरीर की मृत्यु होती है किन्तु 'मैं' के कारण ही उसे पुनः नवीन कलेवर धारण करना पड़ता है।

कोमल मिट्टी में ही अन्न उत्पन्न होता है। भक्ति पथ का प्रारम्भ भी कोमलता से है। जहाँ धरातल कोमल नहीं, जीव मात्र के प्रति सहृदयता नहीं, गलत चाल चलने वालों के प्रति मंगलकामना नहीं वहाँ भक्ति के नाम पर कर्म हो सकते हैं, यथार्थ भक्ति वहाँ नहीं रहती। भक्ति का भय ही गत (समाप्त) नहीं होता, भक्ति की भावना तो धीरे-धीरे भक्त का सर्वस्व प्रभु चरणों पर अर्पित करा देती है। आकर्षण के कारण जहाँ भक्तिपथ पर प्राणी अग्रसर होता है वहाँ उसे सोचने-विचारने की जरूरत ही नहीं पड़ती, वहाँ तो आन्तरिक प्रेरणा ही प्रेरक बनकर मार्गदर्शन करती रहती है।

अपने को मिटाना वह उच्च अवस्था है जहाँ आनन्द ही आनन्द का वर्षण है। किन्तु शरीर रहे, कर्म करता सा दिखलाई पड़े और तब भी करने वाला एक ईश्वर ही मालूम पड़ता रहे यह अवस्था मानवीय बल का प्रसाद नहीं। मानवीय बल तब हार मानता है जब कोई जीता-जागता ईश्वरमय भक्त सम्मुख रहे। अनन्त जन्मों की ईश्वर-दर्शन की विकलता में भक्त के दर्शनों को पाकर उसके प्रति प्रथम शरणागति की अवस्था बनती है और तत्पश्चात् भक्त ही कृपा करके शरणागत को अपने हृदयासन पर विराजमान भगवान के दर्शन कराकर उसकी वह अवस्था बनाते हैं जहाँ शरीर रहते शरीर से ऊपर उठने की अवस्था बनती है और तभी जीवन में सारे झगड़ों का अन्त आता है और मात्र आनन्द ही आनन्द शेष रहता है।

भाव, भक्ति व अभिव्यक्ति के प्रणेता

प.पू. 'बालव्यास' पं. श्रीकान्तजी शर्मा

–वीना जायसवाल

जो शिष्य को प्रेरित करे, वही गुरु है। आज की जीवनशैली में गुरु का महत्त्व और अधिक हो जाता है। क्योंकि राग-द्वेष, घृणा, चिन्ता, शोक, हताशा-निराशा, वैमनस्य रूपी घोर अंधकार हमारे चारों ओर व्याप्त है। जिसका निवारण किसी सद्गुरु की प्रेरणा व मार्गदर्शन द्वारा ही सम्भव है।

प्रखर चेतना के प्रतीक होते हैं सद्गुरु। सवाल यह है कि सद्गुरु की चेतना किस रूप में हममें आती है। इस देश में गुरुओं और सन्तों की काफी सुदृढ़ परम्परा है। यह सद्गुरु पर ही निर्भर है कि वह शिष्य को किस तरह बनाता है। गुरुओं की असीम कृपा शिष्यों पर होती है। तुलसी का कथारस भी गुरुवंदना से ही शुरू होता है –

बँदऊ गुरुपद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।

" मैं गुरु महाराज के चरण-कमलों की रज की वन्दना करता हूँ, जो सुरुचि, सुगन्ध तथा अनुराग रूपी रस से पूर्ण है।"

गुरु की आखिर जरूरत क्या है? वह हम पर क्या काम करता है? यह बात सोचने की है। सद्गुरु शिष्य को प्रेरित करता है, कभी अपने वचन से तो कभी अपनी दृष्टि अथवा स्पर्श से। यही नहीं इन सबसे भी परे वह स्मरण अथवा संकल्प मात्र से भी शिष्य को प्रेरित करता रहता है। गुरु तो अदृश्य रहकर भी प्रेरित करता रहता है। यदि हमें अपने अन्दर से कोई प्रेरणा मिले तो वह हमारा कार्य नहीं वरन् किसी महापुरुष, सद्गुरु का है, जिसे हमने देखा नहीं लेकिन उसकी प्रेरणा मिल रही है। सद्गुरु शिष्य को प्रेरित करने के बाद अपनी चैतन्यता का प्रमाण देने लगता है। वो हमारी अन्तरात्मा पर पड़ी मैली चादर को अपने उपदेशरूपी साबुन से धोकर आत्मा को परमात्मा में लीन कर देता है। गुरु के उपदेश के बिना आत्मतत्व की उपलब्धि नहीं होती । गुरु के बिना जीवन वृथा हैं। उसके पथ-प्रदर्शन के बिना इस भवसागर को पार करना कठिन ही नहीं असम्भव है।

जिसको आप गुरु कहें, उन्हें कभी साधारण नहीं समझना चाहिए। वो अपने-आप में क्या हैं? ये भूल जाइये, आपकी अपनी पूर्ण श्रद्धा, विश्वास उनमें होना चाहिए। वो क्रोधी हैं, कामी हैं, मोटे हैं, ठिगने हैं, छोटे हैं, आश्रम वाले हैं या आश्रम वाले नहीं हैं, जैसे भी हैं यदि आपने उन्हें अपना गुरु मान लिया है तो आपकी श्रद्धा उनमें पूर्ण ब्रह्म परमात्मा की होनी चाहिए। जिसको आपने गुरु कहा है उनपर आपका सोलह आने भरोसा होना चाहिए,क्योंकि आपकी श्रद्धा ही गुरु में से ब्रह्म का प्राकट्य करती है, यदि आपकी श्रद्धा में ही कमी हो जायेगी तो फिर चाहे स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश ही आपके गुरु क्यों न हों तो भी आपका कुछ भला नहीं हो सकता। किन्तु यदि किसी साधारण मनुष्य में भी आपकी गुरु-परम्परा है

उनमें श्रद्धा है, विश्वास है तो आपका भला हो सकता है। अर्थात् या तो किसी को गुरु बनाओ नहीं और यदि गुरु बनाओ तो पूर्ण श्रद्धा, भक्ति व विश्वास के साथ। तभी तो कहा गया है -

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः
गुरुर्साक्षात् परम ब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर सबका सम्मिलित व संगठित स्वरूप ही किसी पर ब्रह्मरूपी सद्गुरु की उत्पत्ति करता है। तभी तो हमारे देश में गुरु को पूर्ण माना गया है और इसलिए हम 'गुरुपूर्णिमा' का पर्व मनाते हैं। गुरु जब शिष्य को दीक्षा देता है, उसके सिर पर अपनी करुणा का हाथ रख देता है, तो दोनों का चित्त, दोनों की वाणी सब कुछ एकाकार हो जाते हैं। वो अपने शिष्य के जीवन के समस्त कलुष-कल्मष का प्रक्षालन कर उसके जीवन में खुशियों के इन्द्रधनुषी रंग बिखेर देता है। गुरु की आँखों से ही शिष्य प्रभु के दर्शन करने में सक्षम हो पाता है।

जिसने तुम्हें राहें दी, जिसने तुम्हें प्रभुमिलन के लिए आहें दी, जिसने तुम्हारी आँख में प्रभु के लिए आँसू दिये, जिसने तुम्हारे अन्दर तड़प व सरलता पैदा की, जिसने तुम्हारे जीवन में हाहाकार मचा दिया है, आपका तन-मन सुलग उठे जिससे मिलने के बाद, ऐसा ही व्यक्ति आपका सद्गुरु हो सकता है और ये सब आपकी पूर्ण निष्ठा व श्रद्धा के कारण ही हो सकता है। गुरु के ऊपर कभी शंका नहीं करनी चाहिए।

बहुत से लोगों को कहते सुना है कि " हमारे गुरु मर गये" उसमें प्रश्न उठता है कि गुरु था तो मरा कैसे? और मरा तो गुरु कैसे? गुरु कभी मरते नहीं शरीर आते हैं, शरीर जाते हैं, गुरु तो मंत्ररूप है और मंत्ररूप गुरु सदा आपके साथ रहते हैं। किसी भी बात के लिए

गुरु को दोष नहीं देना चाहिए, दोष देना है तो अपनी श्रद्धा की कमी को, अपनी भक्ति की कमी को, अपने भजन की कमी को या फिर अपनी बुद्धि की कमी को दोष देना क्योंकि गुरु तो साक्षात् परमब्रह्मा है-

गुरुकृपा ही केवलम्...
गुरुकृपा ही केवलम्.......

सूरज, चाँद, सितारे ये सब तो केवल बाह्य प्रकाश करते हैं, किन्तु आपके अन्तर्मन को तो कोई सद्गुरु ही आलोकित कर सकता है।

"गुरुकृपा की चिमनी से यदि भक्तिरूपी दीपक को ढक देंगे तो वह कभी बुझेगा नहीं"

कहते हैं सूरदास अन्धे थे। किन्तु सूरदास जब अपने गुरु बल्लभाचार्य के पास जाते और उनके चरणों को हाथ लगते थे तो उन्हें दर्शन बाँके बिहारी के हाते थे। वो स्वयं कहते हैं - इधर गुरु की नखचन्द्र छटा को छूता हूँ उधर ठाकुर की रूपघटा नयनों में समा जाती है तो हम कैसे कह सकते है कि सूर अंधे थे, वो अपने गुरु की कृपा से कृष्ण के रूप के दर्शन कर पाते थे, कृष्ण के ऐसे सुन्दर-सुन्दर पद सूर ने गाये किसकी प्रेरणा से? अपने सद्गुरु की। अपने अन्तिम समय में गुरु की याद में रोते-रोते प्राण छोड़ दिये सूर ने -

भरोसो दृढ़ इन चरणन् को
श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिन
सब जग मांझी अँधेरो है
भरोसो दृढ़ इन चरणन के।।

वाह! क्या गुरु है..........और ऐसे ही सद्गुरु हैं हमारे परम पूज्य श्रीकान्त जी शर्मा। कहते हैं कि जो

भगवान को ज्यादा गाता है - भगवान अपने जैसा ही रंग रूप, अपने जैसी चाल-ढाल, अपने जैसा हाव-भाव उसको दे देता है। १३ वर्ष की अल्पायु से ही कृष्ण को गाते-गाते आप स्वयं ही कृष्णरूप हो गये हैं। हमने जीवन में भगवान को तो नहीं देखा पर अपने गुरु को देखकर कमी पूरी हो जाती है। लगता है - कृष्ण सो रहा है, कृष्ण बोल रहा है, कृष्ण चल रहा है वो हमें देख रहा है, हर पल, हर घड़ी कृष्ण हमारे साथ है और सबसे बड़ी बात कि हम प्रत्यक्ष रूप में उस कृष्ण के सानिध्य का आनन्द उठा रहे हैं, अपना सर्वस्व ही प्रभु ने दे डाला है उनको। अपने जैसा रूप- रंग, हाव-भाव करुणा, दया सभी कुछ। आपकी वाणी में अद्भुत आकर्षणशक्ति है जो श्रोताओं को सम्मोहित कर उनके हृदय को विदीर्ण कर देती है। आपका मार्मिक प्रवचन श्रोताओं को सम्मोहित कर उनके हृदय की विदीर्ण कर देता है। आपका मार्मिक प्रवचन श्राताओं को को मन्त्रमुग्ध कर देता है, कथाओं के विविध प्रसंगों को रूपायित करने की विलक्षण क्षमता भक्तों के हृदय को झकझोर कर उन्हें भक्तिरूपी सन्मार्ग पर चलने को प्रेरित कर देती है। सबके प्रति समान, प्रेममय, आत्मीय व्यवहार तो जन साधारण को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। आपकी शैली इतनी सरल, सरस और भावों से ओत-प्रोत रहती है कि भक्तगण उसमें स्वतः ही बहते चले जाते हैं।

हम धन्य हैं कि ऐसे सुहृदय सहज, सरल ब्रह्मविद पुराणवेत्ता गुरुदेव पं. श्रीकान्त जी के सानिध्य का सौभग्य हमें प्राप्त है। उनके साथ बिताये गए पल हमारे जीवन का स्वर्णिम आधार है। इस आकांक्षा के साथ कि वे अपने प्यार स्नेह व शुभाशीषों के रंग सदैव हमारे जीवन में भरते रहेंगे और आपकी कृपा से परमब्रह्म परमेश्वर के सामीप्य का अनुभव हम सदा करते रहेंगे, मैं गुरुपूर्णिमा के पावनपर्व पर अपने उद्‌गारों की इस पुष्पांजलि को उनके श्रीचरणों में अर्पित करते हुए इन शब्दों के साथ आपसे विदा लेती हूँ।

बंदऊँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।

मैं गुरु के चरण कमल की वन्दना करती हूँ जो कृपा समुद्र और नररूप में हरि ही हैं।

जय श्री कृष्ण!

सदस्यों के लिए आवश्यक सूचना

रस-बनमाली के जनवरी, फरवरी व मार्च 2004 के सदस्यों से अनुरोध है कि सदस्यताशुल्क भेजकर अपना नवीनीकरण करा लें। ताकि पत्रिका सुचारू रूप से प्रेषित की जा सके। कार्यालय से पत्रव्यवहार करते समय ग्राहक-संख्या एवं पूरा पता अवश्य लिखें। मनीआर्डर द्वारा शुल्क भेजते समय संदेश के कालम में अपना पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में अवश्य लिखें।

— प्रबन्ध सम्पादक

कलियुग का महापर्व रथयात्रा महोत्सव

–डॉ. अतुल टण्डन

श्री जगन्नाथपुरी हमारे चार परम पावन धामों में से एक है। प्राचीन काल में यहाँ नीलांचल पर्वत था, जिस पर नीलमाधव भगवान की दिव्य प्रतिमा थी। सभी देवता उसकी आराधना करते थे। बाद में वह पर्वत भूमि में चला गया और भगवान नीलमाधव के श्रीविग्रह को देवगण अपने लोक में ले गये किन्तु यह पवित्र क्षेत्र आज भी 'नीलांचल' के नाम से विख्यात है। पुरी में जगन्नाथजी के मंदिर के शिखर पर लगा चक्र 'नीलच्छत्र' कहलाता है। इस नीलच्छत्र के दर्शन जहाँ होते हैं वह क्षेत्र श्रीजगन्नाथ का पावन धाम है। इस स्थान के अन्य नाम- श्रीक्षेत्र, शंखक्षेत्र, एकाग्रक्षेत्र, विरजाक्षेत्र, पुरुषोत्तमपुरी आदि भी हैं। ऐसी भी मान्यता है कि श्री बदरीनाथ सत्ययुग का, रामेश्वरम् त्रेतायुग का ,द्वारिका द्वापरयुग का तथा श्री जगन्नाथपुरी कलियुग का प्रधान तीर्थ है। श्रीजगन्नाथजी का मंदिर बहुत विशाल है जो दो परकोटों के भीतर है। इसमें चारों ओर चार महाद्वार-पूर्व में सिंहद्वार, दक्षिण में अश्वद्वार, पश्चिम में व्याघ्रद्वार तथा उत्तर में हस्तिद्वार है। मुख्य मंदिर के तीन भाग हैं- विमान या श्रीमंदिर जिसमें श्रीजगन्नाथजी महाराज विराजमान हैं, जगमोहन जहाँ गरुडणस्तम्भ है, मुखशाला एवं भोगमंडप। मंदिर में १६ फुट लम्बी और ४फुट ऊँची वेदी पर श्रीजगन्नाथ बहिन सुभद्रा तथा भाई बलराम जी के साथ विराजित हैं। श्री जगन्नाथजी का श्याम(कृष्ण) वर्ण है जबकि बरलराम जी गौरवर्ण के हैं। दोनों भाइयों के मध्य में उनकी प्रिय बहिन सुभद्रा हैं। इन मूर्तियों की यह विशेषता है कि ये तीनों अपूर्ण हैं। उनके हाथ पूरे नहीं बने हैं। इसका कारण भी धर्मग्रन्थों में वर्णित है। द्वापरयुग में द्वारिका में द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण की पटरानियों ने एक बार माता रोहिणीजी के भवन में जाकर उनसे श्रीश्यामसुन्दर की ब्रज-लीला के गोपी-प्रेम प्रसंग को सुनाने का जब बहुत आग्रह किया तो माता रोहिणी ने सुभद्रा को भवन के द्वारा के बाहर खड़े रहने का आदेश देकर ब्रज का प्रसंग सुनाना शुरू कर दिया। संयोगवश उसी समय श्रीकृष्ण बलराम दोनों वहाँ पधारे। सुभद्राजी ने दोनों भाइयों के मध्य खड़े होकर दोनों हाथ फैलाकर उनको भीतर जाने से रोक दिया। लेकिन भवन में ब्रज-प्रेम संदर्भ में हो रही वार्ता को सुन लेने पर तीनों के शरीर द्रवित होने लगे। देवर्षि नारद ने तत्काल वहाँ उपस्थित होकर उनसे यह प्रार्थना की 'आप तीनों इसी प्रेमद्रवित रूप में विराजमान हों।' 'कलियुग में दारूविग्रह में इसी रूप में हम तीनों स्थिति होंगे।'
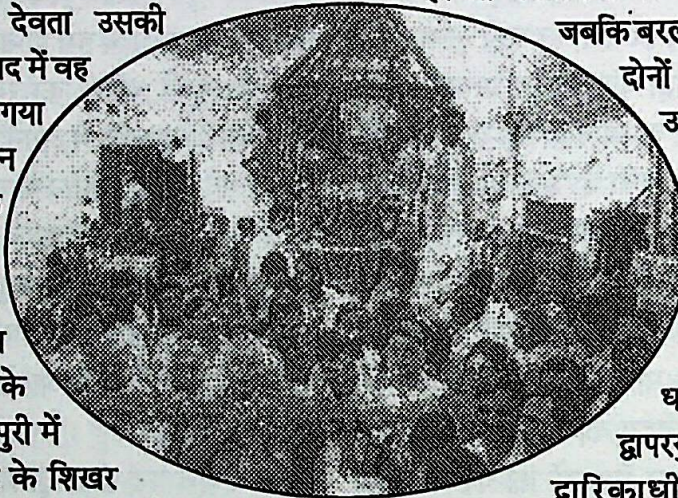
प्राचीन काल में मालवदेश के नरेश इंद्रद्युम्न को जब उत्कल प्रदेश (उड़ीसा) में नीलांचल पर्वत पर विराजित नीलमाधव के श्रीविग्रह को देवताओं द्वारा ले जाने की बात पता चली। तब परम विष्णुभक्त राजा इंद्रद्युम्न को व्यथित देखकर आकाशवाणी हुई 'तुम्हें अब दारू (काष्ठ) विग्रह के रूप में श्री जगन्नाथ के दर्शन होंगे।' इस पर राजा सपरिवार नीलांचल के स्थान पर बस गये। एक दिन समुद्र में एक बहुत बड़ा काष्ठ (महादारू) बहकर आया। राजा ने उस लकड़ी के लट्ठे को समुद्र से निकलवा कर उससे श्रीहरि की मूर्ति बनवाने का निश्चय किया। उसी समय वृद्ध बढ़ई के रूप में विश्वकर्मा जी ने वहाँ पहुँचकर मूर्ति के निर्माण का कार्यभार अपने पर ले लिया पर उन्होंने राजा से एक वचन लिया कि जब तक वे सूचित नहीं करेंगे तब तक उस भवन में कोई प्रवेश न करे अन्यथा निर्माण कार्य रुक जायेगा। राजा ने वृद्ध बढ़ई रूपी विश्वकर्माजी का वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। बढ़ई ने भवन के अंदर एकान्त में महादारू (लकड़ी के लट्ठे) से मूर्ति बनाना शुरू कर दिया। अनेक दिन व्यतीत हो जाने पर जब बढ़ई की ओर से कोई समाचार नहीं मिला तो राजा-रानी चिन्तित हो उठे कि कहीं भूख-प्यास से वृद्ध मूर्तिकार मरणासन्न तो नहीं हो गया है। तब बूढ़े बढ़ई की अवस्था जानने के लिए महाराज ने वचनभंग करके भवन का द्वार खुलवाया तो विश्वकर्मा वहाँ से अदृश्य हो गए तथा वहाँ श्रीजगन्नाथ, सुभद्रा एवं बलराम की अधूरी मूर्ति प्रतिमाएँ मिली। राजा को मूर्तियों के पूरा न बना होने से बड़ा दुख हुआ। किन्तु उसी समय आकाशवाणी हुई 'चिन्ता न करो। कलियुग में हमारी इस रूप में पूजा होनी है अतः यही हमारी इच्छा है। मूर्तियों पर पवित्र द्रव्य (रंग आदि) चढ़ाकर उसे प्रतिष्ठित कर दो।' इस प्रकार पृथ्वी पर पधारे श्रीजगन्नाथ अपने भाईबहिन के साथ। गुंडीचामंदिर के पास मूर्तियों का निर्माण हुआ था अतः उसे ब्रह्मलोक कहते हैं।

द्वारिका में एक एक बार सुभद्राजी ने नगर को जब देखने की इच्छा व्यक्त की तो श्रीकृष्ण-बलराम ने तीन पृथक रथों पर आरूढ़ होकर उन्हें नगर-दर्शन करवाया। उसी की स्मृति में आषाढ़ मास के शुक्लपक्ष की द्वितीया तिथि को प्रत्येक वर्ष रथयात्रा का महोत्सव श्रीजगन्नाथपुरी के साथ देश के लगभग सभी प्रमुख नगरों में बड़े उत्साह एवं भक्तिभाव से मनाया जाता है। श्रीजगन्नाथ के रथ का नाम 'नन्दीघोष', सुभद्राजी के रथ का नाम 'देवदलन' है। पुरी में इस तीनों रथों पर आरूढ़ देव-विग्रहों को खींचकर गुण्डीचामंदिर तक लाया जाता है।

आषाढ़ शुक्ल द्वितीया से दशमी तक नौ दिनों तक इस विश्वविख्यात रथयात्रा का 'पर्वकाल' जगन्नाथपुरी में सम्पन्न होता है। इसमें भाग लेने के लिए असंख्य भक्तगण एवं बड़ी संख्या में पर्यटक पुरी (उड़ीसा) आते हैं।

शास्त्रों में लिखा है कि जिनके नाम का संकीर्तन करने से सौ जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं, रथ पर स्थिर उन पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण (जगन्नाथ) का बलराम एवं सुभद्रा जी के साथ दर्शन करने पर मनुष्य अपने जन्म-जन्मांतरों के पापों से मुक्त हो जाता है। जो भक्तगण भगवान की इस यात्रा में सम्मिलित होकर जयकारा और भजन -कीर्तन करते हुए चलते हैं, उन्हें पग-पग पर अनेक यज्ञों का फल प्राप्त होता है। वस्तुतः भगवान भक्तों को दर्शन देकर कृतार्थ करने के लिए स्वयं रथयात्रा करते हैं। भगवान के मनुष्यों के समीप आने का प्रतीक है 'रथयात्रा महोत्सव' कलियुग का यह महापर्व है।

आदमी थकता कब है?

–दीनानाथ झुनझुनवाला

प्रत्येक आदमी अपने ढंग से अपनी थकान मिटाता है। सभी को आराम करके अपनी थकान मिटानी चाहिए लेकिन ऐसा होता नहीं। इसका मतलब हुआ कि थकान मिटाने के लिए आराम करने की आवश्यकता नहीं। पंडित नेहरू ने एक बार कहा था कि "मैं चाहे कितना ही थका होऊँ, अगर मुझे पांच लाख की भीड़ के बीच भाषण देना हो तो मेरी थकान मिट जायगी।' मैं कुछ लोगों को देखता हूँ कि दिन भर खट के काम करते हैं लेकिन रात को घर आने पर घंटे दो घंटे जब तक यार दोस्तों के बीच नहीं जाते और कुछ काम की एवं कुछ बेकाम की बातें नहीं करते, थकान नहीं मिटती। गोरखपुर में एक वकील साहब के पास 'इक्का' था। दिन भर कचहरी में काम करके वकील साहब थक जाते थे। शाम को पांच बजे कचहरी से सीधे अपनी किसी रखैल के पास जाते, वहाँ एक दो घंटे बैठते, फिर घर आते। वे अपनी थकान को अपनी रखैल के घर मिटाते। मैं खुद जब काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ता था तो घर से सायकिल पर विश्वविद्यालय आया जाया करता था। आना जाना मिलाकर २० किलोमीटर की दूरी तय करना पड़ता था। लेकिन आने के बाद जब तक व्यायामशाला जाकर वहाँ व्यायाम आदि नहीं करता था, थकान नहीं मिटती थी। मैं प्रातःभ्रमण नियमित करता हूँ। प्रातःभ्रमण कभी भंग नहीं होता, चाहे देश में रहूँ, प्रदेश में रहूँ या विदेश में रहूँ। प्रातःभ्रमण भी काफी तेज चलकर लगभग पाँच किलोमीटर की दूरी तय करता हूँ। चलने में पसीना भी छूटता है, मेहनत भी होती है लेकिन उससे ताजगी आती है। कभी ट्रेन से यात्रा के कारण किसी दिन प्रातःभ्रमण संभव न होने पर सुस्ती मालूम पड़ती है और सारा दिन उतनी चुस्ती में नहीं बीतता, जितना प्रातःभ्रमण करने के बाद बीतता है। जिस दिन मेरा सारा दिन अत्यन्त व्यस्तता में बीतता है उस दिन के मुकाबले जिस दिन व्यस्तता कम होती है ज्यादा भारीपन महसूस होता है।

तो आदमी के थकने का राज क्या है? आदमी काम की अधिकता से नहीं थकता, काम की अनियमितता से थकता है। जिस क्रिया में मन नहीं लगेगा उसमें थकान आयेगी। जिस क्रिया में पूरा मन लगेगा उसमें सबसे कम थकान आयेगी। मैंने ऐसे लोगों को देखा है जो मात्र डेढ़-दो घंटे का विश्राम २४ घंटे में करते हैं और हमेशा तरोताजा रहते हैं। जो ज्यादा विश्राम करते हैं या सोते हैं, उनका स्वास्थ्य प्रायः अनुकूल नहीं रहता। अतः यह कहना कि आदमी को २४ घंटे में कम से कम ६ घंटे का विश्राम करना चाहिये, आवश्यक नहीं है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'कर्म कर बिना फल की आशा के'। फल मिलना तो निश्चित है। यह कर्म का विधान है कि कर्म होगा तो फल भी भोगना पड़ेगा। बिना फल की आशा के कर्म करने का मतलब है कि पूरी तन्मयता से काम करना। फल की आशा से काम करेगा तो जितनी मात्रा में फल की आशा होगी, उतनी मात्रा में कर्म की तन्मयता कम हो जायगी। भगवान कृष्ण की तन्मयता में कभी कभी नहीं आई। गाय चराई तो, गायों की सेवा की तो, मक्खन चुराया तो, युद्ध लड़ाया तो, गोपियों के साथ महारास रचाया तो। जीवन के किसी काम में तन्मयता १०० फीसदी होगी तो उस काम में कभी थकान नहीं आएगी। आदमी शरीर से नहीं थकता, मन से थकता

है। अतः जो भी क्रिया करें, मन उसी के साथ लगा रहे तो निश्चित है थकान नहीं आयगी।

हम आप चौबीसों घंटे श्वास लेते छोड़ते हैं। हमारी आँख की पलकें भी जब तक जगते रहते हैं उठती, गिरती रहती हैं। क्या हमने कभी कहा कि श्वास लेने छोड़ने से या पलकों के गिरने उठने से हमारे में थकान आ गई या फेफड़े ने कभी कहा कि मुझे थकान मिटाने के लिये थोड़ा आराम चाहिये। फेफड़े के आराम करने का मतलब है खेल खत्म। क्यों नहीं फेफड़े एवं आँखों की पलकें थकती, कारण ये दोनों क्रियाएँ अपने आप सहज और स्वाभाविक रूप से होती रहती हैं। ये क्रियाएँ हम करते नहीं, अपने आप होती हैं। याने क्रिया जब सहज एवं स्वभाविक रूप से होती रहेंगी, हम हम कभी थकेंगे नहीं। कारण यह क्रिया हम करते नहीं, अपने आप होती हैं। इस तरह की स्थिति बन जाती है। समर्पित भक्त की सभी क्रिया प्रभु आश्रित होती है, प्रभु की मर्जी से होती है। अतः ऐसे भक्त क्रिया करते नहीं, क्रिया अपने आप होती हैं। जब भी क्रिया अपने आप सहज स्वाभाविक ढंग से होती रहेंगी, आप में कर्तापन का भाव नहीं होगा तो थकान नहीं आयगी।

ख्याल करें कि जब आप गहरी नींद में सोते हैं तो उठने पर सबसे ज्यादा हल्कापन महसूस होता है। अगर आप लेटे हैं और नींद नहीं आई तो आपकी थकान नहीं मिटेगी। नींद की अवस्था में जब आप स्वप्न देखते हैं तो भी आपकी थकान नहीं मिटती। स्वप्नावस्था में तो ऐसा भी होता है कि स्वप्न अगर अच्छा बुरा देख लिया तो शरीर पर उसकी प्रतिक्रिया भी अच्छी बुरी पड़ती है। अगर आप स्वप्नावस्था में किसी स्त्री से संभोग की आनन्द ले रहे हैं तो आपको स्वप्न दोष होना निश्चित है। कभी कभी स्वप्नावस्था में भयभीत होकर आदमी चिल्लाने लगता है, कभी हंसने लगता है, कभी बड़बड़ाने लगता है। यह भी देखा गया कि बगल में सोने वाले से वह लिपट जाता है भय के कारण। याने जब भी आप स्वप्नावस्था में रहेंगे, आपकी थकान मिटने के बजाय बढ़ेगी। अतः जब तक गहरी निद्रा न हो, सोने से परहेज करना चाहिये। गांधी जी ट्रेन से यात्रा करते थे। ट्रेन अगर १०-२० मिनट लेट होती थी तो प्लेटफार्म पर ही अपना बिस्तर सो जाते थे। और आश्चर्यजनक बात यह है कि जितने मिनट के लिये सोना चाहते थे उतने मिनट में नींद अपने आप खुल जाती थी ओर उतने ही मिनट में गहरी नींद ले लेते थे। यह कब और कैसे सम्भव है? जब आदमी का मन उसके काबू में हो। आदमी भूत, वर्तमान एवं भविष्य की व्यवस्था जान ले तो अच्छा है। भूत काल सपना है, भविष्य काल कल्पना है एवं वर्तमान अपना है। वर्तमान में वही रह सकता है जिसका मन एकाग्र होगा। मन को एकाग्र करना अत्यन्त कठिन कार्य है। मन के जितना चंचल और गतिमान तो विश्व में कोई दूसरी चीज है ही नहीं अवस्थायें भी तीन काल से सम्बन्धित है। बच्चा हमेशा वर्तमान में जीता है। उसे भूत, भविष्य की कोई चिन्ता नहीं होती। जवान हमेशा भविष्य काल में जीता है। उसके अरमान बहुत कुछ करने को होते हैं कि हम ऐसा करेंगे, हम वैसा करेंगे। वहीं बूढ़ा आदमी हमेशा भूतकाल में जीता है और सोचता है हमने ऐसा किया, हमने वैसा किया।

अतः आदमी थकता कब है जब उसका क्रिया में मन नहीं लगा रहेगा। थकान मिटाने के लिये आराम करना ही एकमात्र उपाय नहीं है। जिस आदमी का जिस क्रिया में मन लगता है उसी क्रिया से उसकी थकान मिटती है। थकान मिटाने के लिये गहरी नींद आवश्यक है। केवल लेटने एवं स्वप्न से आराम नहीं मिलता। जितनी मन की एकाग्रता रहेगी, थकान उतनी ही कम आयेगी। योगियों को कभी आराम करते आप नहीं देखेंगे। कारण उनको एकाग्रचित्तता प्राप्त है। अतः थकान मन का धर्म ज्यादा है, शरीर का धर्म बहुत कम है। जब क्रिया सहज और स्वभाविक हो जायगी तो भी थकान नहीं आयगी। •

लक्ष्य प्राप्ति का मूल मंत्र : ध्यान-तन्मयता

–पुष्करलाल केडिया

अपने कार्य अथवा लक्ष्यप्राप्ति में सफलता उन्हें ही मिली है जो एकाग्रचित होकर अपने कर्म में लगे रहे एवं जिन्होंने कार्यसिद्धि को ही अपनी पूजा समझा। माँ सरस्वती के एक साथ हाथ में माला एवं एक हाथ में है पुस्तक। लक्ष्यप्राप्ति के लिए निरन्तर चौबीसों घंटे सब कुछ भूलकर ध्यानमग्न होकर अपनी कार्यसिद्धि के लिए तन्मय होने का प्रतीक है माला, ज्ञान का प्रतीक है पुस्तक। सफलता प्राप्त करने वालों की घटनाओं से इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। सफल व्यक्ति की जीवनपद्धति में एकाग्रता एवं निरन्तर प्रयास ही लक्ष्यप्राप्ति का मूलमंत्र रहा है।

ध्यान-साधना के अनेक उदाहरण सामने आते हैं। साधना में व्यक्ति किस तरह खो जाता है उनके बारे में पढ़कर सुनकर आश्चर्य होता है। ऐसा ही एक उदाहरण है वाचस्पति पंडित का, जिन्होनें ब्रह्मसूत्र की रचना की। वाचस्पति पंडित का विवाह हो गया। ब्रह्मसूत्र की टीका लिखने में ध्यानमग्न हो गये सब कुछ भूलकर। पत्नी उनके भोजन–पानी एवं अन्य सभीव्यवस्थाएँ कर देती। निरन्तर चलता रहा उनका लेखन। कभी किसी ओर ध्यान नहीं गया। ब्रह्मसूत्र की टीकालेखन की साधना पूर्ण हुई। प्रातः होश आया। देखा एक प्रौढ़ महिला दीपक में तेल डालकर जा रही है। उत्सुकता हुई उस उपकारिणी महिला के बारे में जानने की, जो लम्बे अर्से तक इस साधना क़ी सहाभागी बनी है। परिचय जानने पर महिला ने सकुचाते हुए कहा मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ महाराज। पंडितजी स्तब्ध रह गये। उन्हें अपने परिणय सम्बन्ध का स्मरण आया। लक्ष्यसाधना में विवाह, पत्नी, वंश–वृद्धि किसी का स्मरण नहीं रहा। अब वंशवृद्धि की उम्र ही नहीं रही। पत्नी का नाम भी ध्यान में नहीं था। नाम पूछा। पत्नी का नाम धमती है– यह जाना। उन्होंने अपनी टीका साधना को नाम दिया 'धमती'। आज दोनों पति पत्नी उसी नाम से जाने जाते हैं। लक्ष्यप्राप्ति की सफलता का नाम ही है धमती।

लक्ष्यप्राप्ति के लिए ध्यानमग्न होकर सफलता प्राप्त करने वाले का एक और उदाहरण है अर्जुन। गुरु द्रोणाचार्य कौरव एवं पाण्डव बन्धुओं को तीर साधने का प्रशिक्षण दिया करते थे। एक दिन उन्होंने एक पेड़ सभी से दिखा कर यह जानना चाहा कि उन्हें क्या दिखाई दे रहा है। किसी ने कहा मुझे पूरा पेड़ और उस पर बैठी चिड़िया दिख रही है। किसी ने कहा डाल सहित उस पर बैठी चिड़िया दिखाई दे रही है। किसी ने कहा चिड़िया दिख रही है। पर अर्जुन ने कहा उसे चिड़िया की सिर्फ आँख ही दिखाई दे रही है। वही अर्जुन लक्ष्यवेधन में सबसे अव्वल रहा। द्रोपदीस्वयंवर में मछली की आँख बेधने में इसीलिए उसे सफलता मिली।

हमारे सामने गुरु भक्त एकलव्य का दृष्टान्त भी है। द्रोणाचार्य ने उसे अपना शिष्य बनाने में अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। पर वह धनुर्धर बनना चाहता था। उसने मिट्टी की गुरु की प्रतिमा बनायी एवं निरन्तर एकाग्रचित्त होकर अभ्यास में लगा रहा। एक बार एक भौंकते हुए कुत्ते का मुँह उसने वाणों से भर कर बन्द कर दिया पर कुत्ते के मुँह में किसी वाण का स्पर्श न हुआ। द्रोणाचार्य यह चमत्कार देखकर विस्मित हो गये। उन्होंने मन ही मन एकलव्य को

अपनी इस साधना के लिए आशीर्वाद दिया।

विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटीन की सफलता का भी मूल आधार था उसकी तन्ययता एवं ध्यान-साधना। एक बार वे अपनी प्रयोगशाला में किसी गंभीर समस्या में लगे हुए थे। भोजन का समय हुआ। उनकी धर्मपत्नी मेज पर खाना एवं पानी रखकर चली गयी। आइन्सटीन अपनी साधना में लगे रहे। उनका एक दोस्त मिलने आया। उसने देखा, आइन्सटीन अपने कार्य में लगे हुए हैं। कुछ देर बैठा रहा। उसे जोर से भूख सताने लगी। रहा नहीं गया। मेज पर रखा खाना खाया और चला गया। कुछ समय पश्चात् जब समस्या समाप्त हुई तब उन्हें भोजन का ख्याल आया। देखा भोजन के बर्तन खाली पड़े हैं और गिलास में पानी थोड़ा सा है। अपने पर तरस आया। सोचा मैं कैसा व्यक्ति हूँ। खाना खा चुका हूँ पर ध्यान में ही नहीं है। फिर अपने काम पर लग गये, यह थी कार्य की तन्मयता।

परिश्रम, मनोयोग एवं ध्यानसाधना से व्यक्ति जीवन में क्या कुछ नहीं कर सकता। कालिदास का उदाहरण सामने है। महामूर्ख समझा जाने वाला कालिदास माँ सरस्वती के सामने विद्याध्ययन में जुट गया। एकाग्रसाधना से विश्व में वही कालिदास महापंडित कालिदास के नाम से विख्यात हुआ।

छोटे से कार्य में भी लक्ष्यप्राप्ति के लिए ध्यान साधना का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। प्रचलित कथा है। एक लुहार था। वाण बनाता था। निपुण था अपने कार्य में। अन्य लुहार भी वाण बनाते थे पर उनकी प्रसिद्धि सबसे अधिक थी। उसका बनाया वाण औरों की अपेक्षा अधिक पसन्द किया जाता था। एक बार उसके सम्बन्धी ने अपने पुत्र को वाण बनाने के लिए प्रशिक्षण के लिए उसके पास भेजा। वह उसे वाण बनाना सिखाता। पर लड़के का मन बड़ा चंचल रहता। एक बारा राजा की सवारी गाजेबाजे के साथ धूम-धाम से निकल रही थी। सवारी देखकर उसका आनन्द लेकर वह उस लुहार के पास आया। उत्सुकतावश उनसे सवारी का विवरण जानना चाहा। लुहार ने कहा- बेटा मैं तो अपने काम के ध्यान में था, मुझे जानकारी नहीं है- सवारी कब निकली। यही था उसकी प्रसिद्धि का राज।

घटना है अकबर बादशाह के समय की। दिन भर यात्रा करते हुए वे कहीं दूर निकल गये। नमाज का समय हो गया। मार्ग पर ही चद्दर बिछाकर अल्लाह के ध्यान में बैठ गये। उसी समय एक नवयुवती अपने पतिवियोग में इधर-उधर नजर डालती हुई पति की खोज में चल रही थी। उसका पति घर से सुबह निकला था। शाम तक वापस नहीं लौटा था। अपने अंग वस्त्र का भी ध्यान नहीं था उसे। सहसा बादशाह अकबर की चादर पर उसका पैर पड़ा, पर वह ध्यान दिये बिना आगे निकल गयी।

अकबर को उसकी गुस्ताखी पर क्रोध आ गया। कुछ ही देर बाद वह उस मार्ग से वापिस आयी तो अकबर कहने लगा- तुझे दिखा नहीं मैं प्रभुभक्ति में था। तुझे क्या नजर नहीं आया? पैर रखती चली गयी। युवती ने यह सुनकर बड़े धैर्य से एक दोहा पढ़ा-

नर राची सूफी नहीं, तुम कस लख्यो सुजान।
कुरान पढ़त बौरे भयो, नहीं राच्यो रहमान।।

मैं तो अपने पतिदेव की खोज में गुम हो गयी थी जिससे मुझे कुछ सूझा नहीं, परन्तु तुम तो प्रभुध्यान में लीन थे तुमने मुझे कैसे देख लिया। मालूम होता है कि कुरान को पढ़कर बौखला गये हो। भगवान में अभी प्रीति नहीं होती है।

अकबर यह उत्तर सुनकर अवाक् रह गया। कहते हैं वह अक्सर लम्बी सांसे लेकर यह दोहा बार-बार दोहराया करता था। इसी संदर्भ में बहुत प्रचलित रहीम का यह दोहा-

माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख मांहि।
मनवा तो चहुदिश फिरे, यह तो सुमिरन नांहि।।

मन लक्ष्यहीन रहकर ध्यानसाधना करेगा तो कभी स्थिर नहीं रह सकेगा। ध्यान के लिए आवश्यक है- लक्ष्य-उद्देश्य।

निरन्तर साधना से अकल्पकनीय और दुरूह कार्य में सफलता मिलती है। धैर्य लगन और निष्ठा साधना के आवश्यक उपकरण हैं। एक बड़ी रोचक कथा है। शिक्षासत्र पूरा होने पर एक बार एक आचार्य ने अपने शिष्यों की परीक्षा लेनी चाही। सभी शिष्यों के हाथ में बाँस की टोकरियाँ थमा दी गयी एवं उनसे कहा गया पास की नदी से उसमें जल भर कर लाना है और आश्रम की सफाई करनी है। सभी शिष्य टोकरी लेकर नदी के किनारे गये। टोकरी में पानी भरने का प्रयास किया, पर पानी टोकरी से निकल जाता। सभी शिष्य वापिस आश्रम आ गये। एक शिष्य दिन भर यही कार्य क्रम माल फेरने की तरह करता गया। टोकरी के सारे छिद्र बन्द हो गये। पानी गिरना बंद हो गया। टोकरी में पानी भर कर आश्रम पहुँचा और लग गया आश्रम की सफाई में। गुरु ने सभी शिष्यों को एकत्र कर उसकी लगन और साधना की प्रशंसा की। शिष्यों को सरस्वती की माला की महत्ता का गूढ़ रहस्य समझाते हुए उन्होंने बताया कि ध्यान मग्न होकर निरन्तर अभ्यास ही सफलता की कुंजी है।

दृष्टिहीन व्यक्ति सड़क पर चलते नजर आते हैं। लाठी के सहारे लक्ष्य पर पहुँचने का ध्यान रहता है उनका। मेरे पास श्री विशुद्धानन्द हास्पिटल, बड़तल्ला में श्री ओमप्रकाश अग्रवाल कार्य करते हैं। वे दृष्टिहीन हैं। पत्रों का वितरण भी करते हैं। उन्हें कभी किसी कार्य से भेजा जाय-निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचकर वह कार्य पूरा करते हैं। मेरे गाँव गुढ़ागौड़जी से पंडित मालीरामजी शर्मा आये। उन्होंने हलवासिया ट्रस्ट के कार्यालय इंडिया एक्सचेंज प्लेस में जाने के लिए किसी व्यक्ति को उनके साथ देने का अनुरोध किया। मैंने अग्रवालजी को हलवासिया ट्रस्ट कार्यालय में उन्हें साथ ले जाने को कहा। दृष्टिहीन अग्रवालजी उन्हें हलवासिया ट्रस्ट कार्यालय ले गये। कुछ दिनों बाद पंडितजी मिले। उन्होंने कहा जीवन में एक नयी बात देखी। दृष्टिहीन व्यक्ति लाठी टेकता आगे-आगे चल रहा है और दृष्टि वाला व्यक्ति उसके पीछे-पीछे। सघन आबादी वाले और अत्यधिक वाहनों के बीच टूटी-फूटी सड़क पर चलकर लक्ष्य पर पहुँने का एकमात्र कारण था ध्यान। लाठी और ध्यान के सहारे ही ऐसा करना संभव है। दृष्टिवाला व्यक्ति आँख पर पट्टी बाँधकर रास्ते पर चल ही नहीं सकता। दृष्टिवाले व्यक्ति का ध्यान चारों तरफ लगा रहता है। उसे ठोकर खाते भी देखा जा सकता है, पर दृष्टिहीन को ठोकर खाते हुए बहुत कम देखने में आयेगा।

ईश्वर का ध्यान करना चाहिए, पर लक्ष्य बिना ध्यान संभव नहीं है। लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भी कुछ बाधाओं की चट्टानें हैं। उन चट्टानों को सामने से हटाये बिना ईश्वर प्राप्ति संभव नहीं है। काम-क्रोध-मद-मोह (माया) चार चट्टानें हैं जो बाधक हैं ईश्वरप्राप्ति के लिए। ईश्वर की प्राप्ति के लिए यदि ध्यान किया जाता है तो इन चट्टानों को तोड़ना होगा, वरना मन भटकता ही रहेगा।

जीवन में कुछ करने का लक्ष्य होना चाहिए। लक्ष्य न होने पर जीवन उस गाड़ी की तरह है जो निरन्तर चलती रहती है, पर उसका कोई अपना लक्ष्य नहीं रहता है।

वैज्ञानिक, आविष्कारक, कलाकार, साहित्यकार अथवा जिस किसी ने भी अपने जीवन में सफलता प्राप्त की है, अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ध्यान का ही सहारा लिया है सफलता का मूलमंत्र है- ध्यान-सफलता।

मोटापा है बीमारी का कारण

सं०- डॉ. सॉवरमल नदीवाला

आजकल अधिकांश बीमारियों का मूल कारण मोटापा है। स्वस्थ रहने के लिए जरूरी है कि अपने शरीर पर अनावश्यक मोटापा न न चढ़ने दिया जाए।

मोटापे के कारण

अनियंत्रित खान-पान

मोटापे का मुख्य कारण अनियंत्रित खान-पान है। अपनी आवश्यकता से अधिक खाया गया तला भोजन शरीर में अनावश्यक वसा और चर्बी जमा करके मोटापा बढ़ाता है। अमेरिका के आहार विशेषज्ञ डॉ. पाल के अनुसार दुबले-पतले लोग अपने आहार को लेकर काफी चूजी होते हैं। उन्हें बहुत कम ही व्यंजन पसंद आते हैं, जबकि तोटे बच्चों को अकसर सभी प्रकार के व्यंजन रुचिकर लगते हैं। भोजन में तली-भुनी वस्तुएँ, घी, तेल, चीनी, मैदा और चॉकलेट, मांसाहारी व्यंजन और कोल्डड्रिंक्स आदि का अधिक सेवन और उसे पचाने के लिए कोई व्यायाम न करना मोटापे को दावत देता है।

आरामतलब जीवन शैली-

अकसर देखा जाता है कि मोटे लोग परिश्रम करने से जी चुराते हैं। कोई मेहनत नहीं करते और सारा दिन सोते और खाते रहते हैं। जाहिर है वे मोटापे के शिकार होते हैं।

अनुवांशिकता-

मोटापे का वंशानुगत कारणों के साथ भी संबंध होता है, क्योंकि इसके लिए परिवार, जीवनशैली, खान-पान की आदतें, व्यायाम, परिवेश आदि की
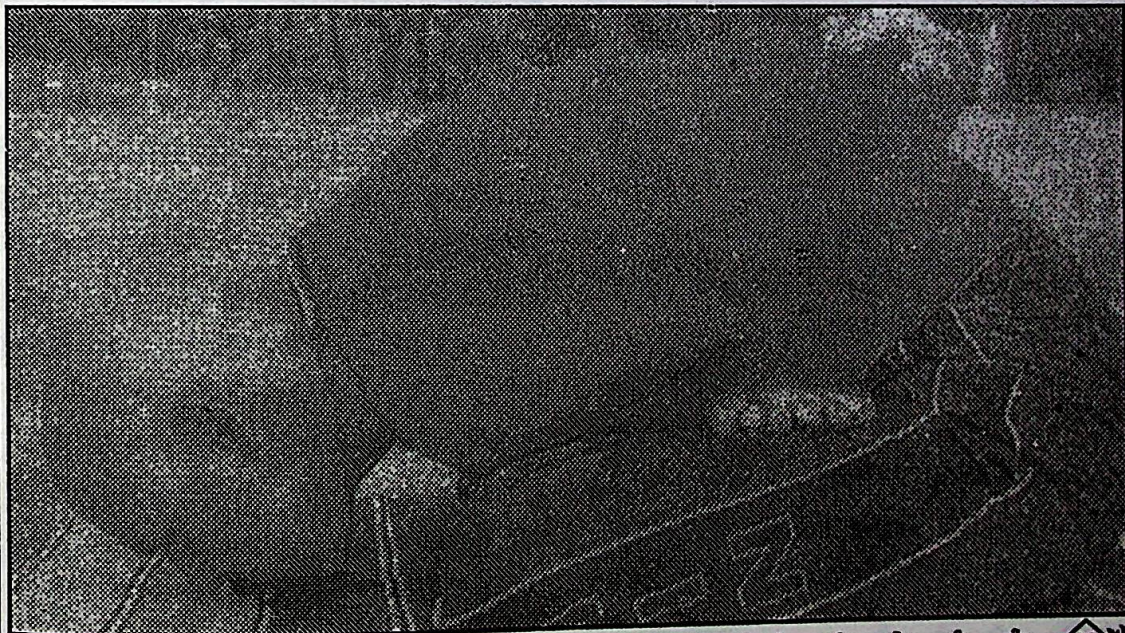
भूमिका भी होती है। यदि माता-पिता दोनों मोटे हैं, तो बच्चे के मोटापे की चपेट में आने की अधिक संभावना रहती है अगर माता-पिता सामान्य हैं, तो बच्चे को मोटे होने की संभावना १०प्रतिशत ही रहती है।

हार्मोनल असंतुलन-

कभी-कभी हार्मोन संबंधी गड़बड़ी भी मोटापे का कारण बन जाती है। कुछ लोगों में थायरायड ग्रंथि की कार्यक्षमता सामान्य से कम होती है, जिसके कारण शरीर की चयापचय प्रक्रिया धीमी पड़ जाती है और मरीज का मोटापा बढ़ने लगता है। कभी-कभी पिट्यूटरी ग्रंथि के अन्य स्राव की वजह से बच्चों में छाती और नितंबों के आस-पास मोटापा बढ़ जाता है।

तनावग्रस्त जीवन-

तनाव में जीने वाले लोगों के शरीर में एक विशेष प्रकार के हार्मोन, कॉर्टीसोल का स्राव अचानक बढ़ जाता है, जिससे पेट के आस-पास चर्बी जमा होने लगती है। जीवन में आने वाले उतार-चढ़ाव, अस्थिरता, निराशा, असफलता जैसी हालतों में या तो भूख मर जाती है या बढ़ जाती है। परन्तु अकसर इसके कारण भूख बढ़ जाना ज्यादा देखा गया है, जो कि मोटापे का कारण बन जाती है।

योग द्वारा मोटापे का इलाज-

मोटापे से निजात दिलाने में सूर्यनमस्कार, नौकासन, सुप्तवज्रासन, मयूरासन, उत्तानपादासन, धनुरासन, हलासन, सर्वांगासन, कूर्मासन, योगमुद्रा, उड्डियामानबंध, अतिसारक्रिया, कलापभाति, सर्वभेदी प्राणायाम आदि लाभदायक रहते हैं।

धनुरासन-

पेट के बल लेट जाएँ। दोनों पैरों को घुटने से पीछे मोड़े और दोनों हाथों को पीछे ले जाकर अपने पैर पकड़ लें और दृष्टि सामने रखते हुए शरीर को इस प्रकार हवा से तानें कि आपका नाभिप्रदेश ही पृथ्वी को छुए। पैरों को हाथों से विपरीत दिशा में खींचे और शरीर को तान दें। आपके शरीर की आकृति धनुष जैसी हो जाए। अपनी क्षमतानुसार रुकें। कम से कम यह आसन तीन बार करें।

योगमुद्रा विधि-

पद्मासन लगाएं और दोनों हाथों को पीछे पीठ की ओर ले जा कर बाँई कलाई को दाँए हाथ से पकड़े। अब श्वास छोड़ते हुए धीरे-धीरे आगे की ओर झुकें और माथा जमीन से लगाने का प्रयास करें। कम से कम तीन बार ऐसा करें। यह आमाशय, यकृत, क्लोम, प्लीहा व छोटी आँतों को प्रभावित करता है और मोटापे में रामबाण का काम करता है।

इन बातों का ध्यान रखें-

- भोजन से कुछ देर पूर्व सलाद खाएँ। भूख नियंन्त्रित रहती है। अतिरिक्त घी-तेल व वसायुक्त भोजन का परित्याग करें।
- दिन में सोना हानिकारक है। दृढ़ इच्छाशक्ति पैदा करें व लक्ष्य निर्धारित करें।
- सब्जी और फलों का अधिकतम सेवन करें। भोजन के मध्य में पानी पीएँ। सदैव अपनी भूख का ५०प्रतिशत ही खाएँ।
- मीठी चीजें और फास्ट फूड, शीतल पेय पदार्थ, आलू और चावल, चटपटी चीजों, मिर्च, मांसाहर, आइसक्रीम, तंबाकू, पान-मसाला, घी-तेल आदि के सेवन से बचें।

मंदिर : रहस्य खजाने की चाबी

जैसे हाथ में चाबी हो, चाबी से हम कुछ भी सीधा जानने का उपाय करें, चाबी से हो चाबी को हम समझना चाहें, तो कोई कल्पना भी नहीं कर सकता उस चाबी की खोजबीन से कि कोई बड़ा खजाना उससे हाथ लग सकता है। चाबी में ऐसी कोई भी सूचना नहीं हैं जिससे छिपे हुए खजाने का पता लगे। चाबी अपने में बिल्कुल बंद है। चाबी को हम चाहे जितना भी तोड़ें-फोड़ें, उस खजाने की कोई खबर हाथ न लगेगी, जो चाबी से मिल सकता है। जब भी कोई चाबी ऐसी हो जाती है जीवन में कि जिसके खजानों का हमें पता नहीं लगता, तब सिवाय बोझ ढोने के हम और कुछ भी नहीं ढोते। जिन्दगी में ऐसी बहुत सी चाबियाँ हैं जो किन्हीं खजानों का द्वार खोलती हैं आज भी खोल सकती हैं। पर न हमें खजानों का कोई पता है और न उन तालों का जो उनसे खुलेंगे। और जब तालों का भी पता नहीं होता और खजानों का भी पता नहीं तो स्वभावतः हमारे हाथ में जो रह जाता है उसको हम चाबी भी नहीं कहत सकते। वह चाबी भी है जब किसी ताले को खोलती हो। जब उससे कुछ भी न खुलता हो, तब वह बोझिल हो जाती है, मगर मन तब भी उसे फेंक देने का नहीं होता। कहीं अचेतन में उसकी धीमी सी गंध बनी रह जाती है। चाहे हजारों साल पहले वह चाबी कोई ताला खोलती रही हो, लेकिन मनुष्य की अचेतना में, उससे कभी ताले खुले हैं और कभी कोई खजाने उससे उपलब्ध होते थे, इस स्मृति के कारण ही उस चाभी के बोझ को हम ढोए चले जाते हैं। न कोई खजाना खुलता है अब, न काई ताला खुलता है! फिर भी कोई कितना ही समझाए कि चह चाबी बेकार है, फेंक देने का साहस भी नहीं जुटता है। कहीं किसी कोने में मन के कोई आशा पलती ही रहती है कि कभी तो कोई ताला खुल सकता है! पृथ्वी पर ऐसी एक भी जाति नहीं है जिसने मंदिर जसी कोई चीज निर्मित न की हो। वह उसे मसजिद कहती हो, चर्च कहती हो, गुरुद्वारा कहती हो, इससे बहुत प्रयोजन नहीं है। मंदिर कोई ऐसीचीज नहीं है, जो बाहर से किन्हीं कल्पना करने वाले लोगों ने खड़ी कर ली हो। मुनष्य की चेतना से ही निकली हुई कोई चीज है। कितने ही दूर, कितने ही एकांत में, पर्वत में, पहाड़ में, झील पर बसा हुआ मनुष्य हो, उसने मंदिर जैसा कुछ निर्मित किया है। तो मनुष्य की चेतना से ही कुछ निकल रहा है। यह अनुकरण नहीं है; एक दूसरे को देख कर कुछ निर्मित नहीं हो गया है। इसलिए विभिन्न तरह के मंदिर बने। बहुत फर्क है एक मसजिद में और एक मंदिर में। उनकी व्यवस्था में बहुत फर्क है। उनकी योजना में बहुत फर्क है। उनकी योजना में बहुत फर्क है। लेकिन आकांक्षा में फर्क नहीं है, अभीप्सा में फर्क नहीं है। तो एक तो जो चीज, मनुष्य कहीं भी हो, कितना ही दूसरों से अपरिचित हो, पैदा होती ही है।

वह मनुष्य की चेतना में ही कहीं कोई बीज छिपाए है, एक तो बात यह ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि हजारों साल हो जाते हैं, न तालों का पता रह

मंदिर : रहस्य खजाने की चाबी

जाता है, न खजानों का, लेकिन फिर भी जिस किसी चीज को हम किसी अनजाने मोह से ग्रसित हो लिए चलते हैं; जिस पर हजार आघात होते हैं, बुद्धि जिसको सब तरफ से तोड़ने चलती है; युग का, आज का बुद्धिमान जिसे सब तरह से इनकार करता है फिर भी मनुष्य का मन उसे संभाले ही चलता है, इस सबके बावजूद, तो उसके पीछे दूसरी बात स्मरण रख लेनी जरूरी है कि मनुष्य की अचेतना में ही, आज उसे ज्ञात नहीं है तो भी, कहीं कोई गूंजती सी धुन जरूर है जो कहती है कि कभी कोई ताला खुलता था अचेतना में इसलिए कि हममें से कोई भी नया पैदा हो गया हो, ऐसा नहीं है। हममें से सभी अनेक बार पैदा हो चुके हैं। ऐसा कोई युग न था, जब हम न हों। ऐसी कोई घड़ी न थी, जब हम न हों। उस दिन जो हमारी चेतना थी, उस दिन जो हमने चेतन को जाना था, वह आज हजारों पर्तो के भीतर दबा हुआ अचेतन बन गया है। उस दिन अगर हमनें मंदिर का रहस्य जाना था और उससे हमने किसी द्वार का रहस्य जाना था और उससे हमने किसी द्वार को खुलते देखा था तो आज भी हमारे अचेतन के किसी कोने में वह स्मृति दबी पड़ी है। बुद्धि लाख इनकार कर दे, लेकिन बुद्धि उतनी गहरी नहीं हो पाती जितनी गहरी वह स्मृति है। इसलिए सब आघातों के बावजूद और सब तरह से व्यर्थ दिखाई पड़ने के बावजूद कुछ चीजें हैं कि परसिस्ट करती हैं, हटती नहीं। नये रूप लेती हैं, लेकिन जारी रहती हैं। यह तभी सम्भव होता है जब हमारे अनन्त जन्मों की यात्रा में अनन्त अनन्त बार किसी चीज को हमने जाना है, यद्यपि आज भूल गये हैं और इनमें से प्रत्येक का बाह्य उपकरण की तरह तो उपयोग हुआ ही है, आन्तरिक अर्थ भी है, अभिप्राय भी है। पहले तो मंदिर को बनाने की जो जागतिक कल्पना है समस्त जगत में सिर्फ मनुष्य है जो मंदिर बनाता है। घर तो पशु भी बनाते हैं, घोसले तो पक्षी बनाते हैं लेकिन
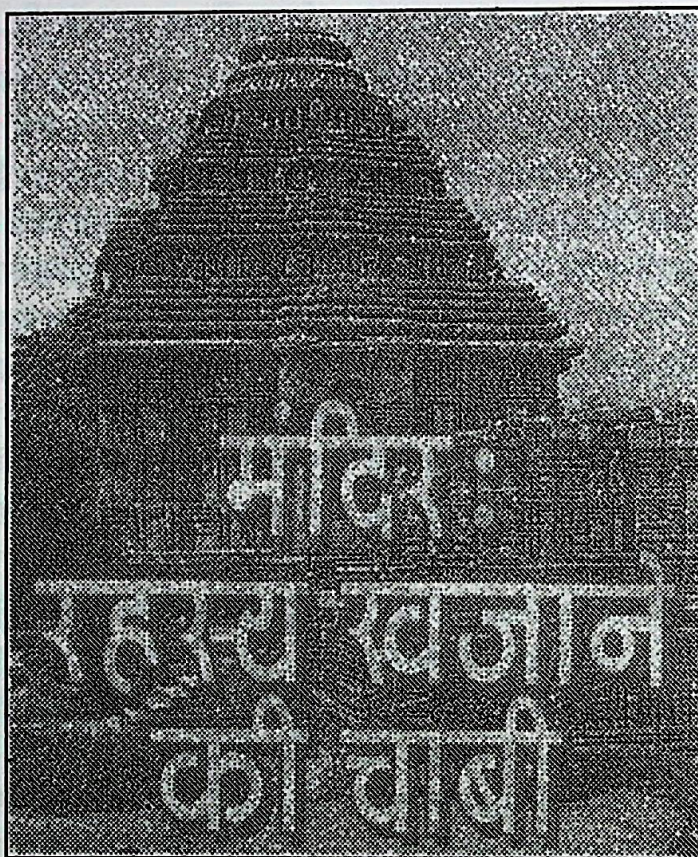
मंदिर नहीं बनाते। मनुष्य की जो भेद-रेखा खींची जाए तो पशुओं से उसमें यह भी लिखना ही पड़ेगा कि वह मंदिर बनाने वाला प्राणी है। कोई दूसरा मंदिर नही बनाता है। अपने लिए आवस तो बिलकुल ही स्वभाविक है। अपने रहने की जगह तो कोई भी बनाता है। छोटे-छोटे कीड़े भी बनाते हैं, पंक्षी भी बनाते हैं, पशु भी बनाते हैं। लेकिन परमात्मा के लिए आवास मनुष्य का जागतिक लक्षण है। परमात्मा के लिए भी आवास, उसके लिए भी जगह बनाना! परमात्मा के गहन बोध के अतिरिक्त मंदिर नहीं बनाया जा सकता। फिर परमात्मा का गहन बोध भी खो जाए तो मंदिर बचा रहेगा। लेकिन बनाया नहीं जा सकता। बिना बोध के आपने एक अतिथि-गृह बनाया घर में, वहाँ अतिथि आते रहें होगे तभी। अतिथि न आते हो तो आप अतिथि-गृह बनाने वाले नहीं है। हालांकि यह हो सकता है कि अब अतिथि न आते हों तो अतिथि-गृह यूं ही खड़ा रह जाय। परमात्मा के लिए एक आवास की धारणा उन क्षणों में पैदा हुई जब परमात्मा सिर्फ कल्पना की बात नहीं थी; अनेक लोगों के अनुभव की बात थी। और परमात्मा के अतरण की जो प्रक्रिया थी, उसके उतरने की, उसके लिए एक विशेष आवास, एक विशेष स्थान, जहाँ परमात्मा अवतरित हो सकें। पृथ्वी के हर कोने पर आवश्यक अनुभव हुआ।

प्रत्येक चीज के अवतरण में, आग्रहण में रिसेप्टिव होने में एक संयोजन है। अभी भी हमारे पास से रेडियों वेव्ज गुजर रही हैं, पर हम उन्हें पकड़ नहीं पाएंगे। रेडियों के उपकरण के बिना पकड़ना कठिन होगा। कल अगर ऐसा वक्त आ जाए- आ सकता है, कल एक महायुद्ध हो जाए, और हमारी सारी टेक्नालॉजी अस्तव्यस्त हो जाये और आपके घर में एक रेडियो रह जाए, आप उसे फेंकना न चाहेंगे। लेकिन अब कोई रेडियो से कुछ पकड़ा नहीं जाता, अब रेडियो सुधारने वाला मिलना भी मुश्किल है। फिर भी हो सकता है दस-पाँच पीढ़ियों के बाद भी आपके घर में रेडियो रखा रहे। और तब अगर कोई पूछे कि इसका क्या उपयोग है? तो कठिन हो जाए बताना। लेकिन इतना जरूर बताया जा सकेगा कि पिता आग्रहशील थे। इतना हमें याद है कि हमारे घर में बचते चले गए हैं। हमें पता नहीं इसका क्या उपयोग है। आज इसका कोई भी उपयोग नहीं है।

और रेडियो को तोड़ कर हम सब उपाय भी कर लें, तो भी इसकी खबर मिलनी बहुत मुश्किल है कि इससे कभी संगीत बजा करता था, कि कभी इससे आवाज निकला करता था, सीधे रेडियो को तोड़ कर देखने से कुछ पता चलने वाला नहीं है। वह तो सिर्फ एक आग्रह था, जहाँ कुछ चीज घटती थी। घटती कहीं और थी, लेकिन पकड़ी जा सकती थी। तो मंदिर आग्राहक थे, रिसेप्टिव इंस्ट्रूमेन्ट्स थे। परमात्मा तो सब तरफ है। आप भी सब जगह मौजूद हैं, परमात्मा भी सब जगह मौजूद है। लेकिन किसी विशेष संयोजन में आप एट्यून्ड हो जाते हैं। आपकी ट्यूनिंग मेल खाती है, तालमेल हो जाता है तो मंदिर आग्राहक की तरह उपयोग में आए। वहाँ सारा इंतजाम वैसा था जहाँ दिव्य भाव को, दिव्य अस्तित्व को, भगवत्ता को हम ग्रहण कर पाएँ। जहाँ हम खुल जाएँ और उसे ग्रहण कर पाएँ। सारा इंतजाम मंदिर का वैसा था। अलग-अलग लोगों ने इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि अलग-अलग रेडियो बनाने वाले लोग अलग-अलग शक्ल का रेडियो बनाये।

•

नीलमाधव की लीलाभूमि

-शरण पाण्डेय

नीलमाधव के दर्शन करना एक अद्वितीय अनुभव है। पुरी के कण-कण में जगन्नाथ का अनुभव होता है। हर जगह उनकी ममतामयी सखाछवि दिखायी देती है।

पर्यटकों को ले आते ले जाते नवागतों की अबाध संक्रियता से प्रतिपल बदलते दृश्यों का नगर है पुरी। प्रायः नौ शताब्दी पूर्व महाराज चोल गंगदेव ने यहां प्रायः ६६ मीटर ऊँचा जगन्नाथ मंदिर स्थापित किया। इस मंदिर पर स्थापित प्रायः साढ़े तीन मीटर ऊँचा, १२ मीटर परिधि का अष्टधातु का नीलचक्र तथा पीले रंग का पन्द्रह मीटर का पतितपावन बाना ध्वज भक्त आगुंतक को दूर से ही दिखने लगता है। आगंतुक के पैरों में पर लग जाते हैं, वह रहे नीलमाधव, कब मिलूँ, बड़ी देर लगी जा रही है, विह्वल भक्त सरपट दौड़ने सा लगता है।

मंदिर के पूर्वाभिमुख सिंहद्वार के सम्मुख खड़ा प्रायः ११ मीटर ऊँचा अरूप स्तम्भ कोई ६०० वर्ष पूर्व महाराज दिव्यसिंह देव द्वारा कोणार्क सूर्यमंदिर के समीप से यहाँ लाया गया था। तब भले ही दूर से दिखता होगा, लेकिन आज परिवेश की अधिक ऊँची आकृतियों के बीच बौना सा असहाय टिका दिखता है। मंदिर के समक्ष का राजपथ तब का बड़ोदांड, अब समीपस्थ भवनों और तज्जन्य अतिक्रमणोंवश मात्र पगदांड बनकर रह गया है। आज तो मंदिर के प्रांगण तक आ जाने से पूर्व लग ही नहीं पाता कि हम आध्यात्मिक स्थल में हैं।

प्रवेशद्वार के दाहिनी ओर अन्यधर्मी लेकिन जगन्नाथ के दर्शन के अभिलाषी लोगों के लिए प्रभु की एक छवि स्थापित की गयी है। यहाँ से अंदर प्रवेश करते ही काफी दूर तक विस्तृत पत्थर की सीढ़ियां अनुभव कराती हैं कि नीलमाधव अब ज्यादा दूर नहीं। उन्हीं सीढ़ियों पर जगह-जगह बैठे श्रद्धालु, संन्यासी, विश्राम लेते दर्शनार्थी और उनके बीच बँट रहे भोजन आदि का दृश्य इस बात का विश्वास दिलाता है कि जगन्नाथ तेरे सहस्र हाथ।

दीनचर्या

प्रातः पाँच से रात्रि 1 बजे तक चौबीस कार्यक्रमों में प्रभुत्रयी अपना दिन पूरा करते हैं। नाम हैं-द्वारफीटा, भीतरसोथा, मंगल आरती, अवकाश मैलम, सहन मेला, वेषलागी रोसाहोम, सूर्यपूजा आदि-आदि। शयन पूर्व नृत्य अर्चना रीति है। पट बंद करने से पूर्व स्वच्छता विस्तारपूर्वक की जाती है।

धाम महात्म्य

जगन्नाथ चारो धामों में एक है, अन्य हैं बदरीनाथ द्वारका, रामेश्वरम। एक गणनानुसार अब तक यहाँ 170 मठ हैं। आद्य शंकराचार्य द्वारा स्थापित गोवर्धन मठ में गोवर्धन नाथ जी की पूजा 2500 वर्षों से होती है। जहाँ शिव अर्द्धनारीश्वर की मूर्तियाँ हैं यज्ञकुंड हैं। वर्तमान स्वामी निश्चलानन्द जी हैं।

मंदिर इतना विस्तृत है कि मुख्य मंदिर तक पहुँचने के मार्ग को प्रांगण कहना कदापि उचित नहीं लगता। संभवतः इसीलिए दर्शनार्थियों और वर्षों से वहीं डेरा जमाए कई भक्तों व मंदिर के सेवकों के होते हुए भी बहुत से कोने एकदम सुनसान भी मिल जाएँगे।

जगन्नाथ भगवान तक जाना है, तो एक सांसारिक अनिवार्यता भी है। वह है प्रसाद की पर्ची कटाना। इसे आलोचनात्मक दृष्टि से देखें तो बुराई है अन्यथा

न्यायिक दृष्टि से देखें तो इतने बड़े मंदिर में जहाँ प्रतिदिन न्यूनतम छह हजार आगंतुक भोजन करते हों, उसके लिए व्यवस्था हेतु यह ही एक मात्र वैधानिक तरीका है।

भक्तों की आवश्यकतानुसार गीला प्रसाद और सूखा प्रसाद दोनों ही उपलब्ध होते हैं। सामान्यतया सूखा प्रसाद दूरस्थ शहरों से आए दर्शनार्थियों के लिए ठीक होता है, शक्कर का पाग चढ़ाया हुआ यह प्रसाद काफी दिनों तक सुरक्षित रहता है ताकि आपके प्रियजनों को भी भगवान का आशीर्वाद मिल सके।

गीला प्रसाद भी आपकी इच्छानुसार मिलता है। प्रभु की भोग लगी खिचड़ी भी मिलती है। मन हो, तो उसी से मध्यान्ह भोजन कर तृप्त अनुभव कर सकते हैं।

प्रसाद लेने के बाद बेला है भगवान के सम्मुख पहुँचेन की। सीधा भगवान के सामने। लेकिन भीड़ इतनी कि उनके दर्शन एक बार में तो मुश्किल ही से होते हैं। माधव से एकांत और एकाग्र भक्ति का अवसर तनिक ही मिल पाता है। एक मीटर ऊँची, पाँच मीटर लंबी रत्नवेदी पर विराजमान तीन मूर्तियां जगन्नाथ जी, बलबद्र जी, सुभद्रा जी को देखना फिर ध्यान हेतु आँखे मूंदने का उपक्रम भी असंभव जैसा है, भक्त केवल एक ही नहीं, अन्य भी हैं, जो उनके एक क्षण के दर्शन के लिए कोसों दूर शहर से आए हैं। तभी पास ही में आरती सजाए पुजारी समूह आ जाता है। माधव के समक्ष अपने भूत भविष्य को भूले भक्त को अचानक अपना सांसारिक बोध होता है। पूजा की मनुष्यकृत औपचारिकताएँ जल्दी से निपटाकर मन कहता है, 'चलता हूँ नीलमाधव, तुम हृदय की भक्ति तो जानते ही हो, तनिक इस कोलाहल से उबरूँ तो तुम्हें निहारूँ।'

प्रभुदर्शन की यह यात्रा पंडो बिना थोड़ा कठिन हो जाती है। वर्षो से चली आ रही परंम्परा के कारण दर्शनार्थी के साथ उनका होना आवश्यक सा हो चला है। यद्यपि कुछ ऐसे भक्त भी मिल जाएँगे जो किसी न किसी युक्ति से उनसे बच निकलते हैं। पर साथ हो लिए पंडे से दक्षिणा का पहले ही तय कर लेना भी एक शांतिपूर्ण उपाय है। यह पंडा तब तक साथ रहता है, जब तक दर्शन पूरे नहीं हो जाते। पंडा आपका प्रसाद, उसमें दक्षिणा लेकर आपके कुटुम्ब का नाम लेते हुए नीलमाधव के लिए संकल्पता है और फिर वह उसे समर्पित करने के लिए ले जाता है। वापस आकर अपने हाथों से आपको प्रसाद देता है और बाकी आपके हाथ में आपके प्रियजनों के लिए।

अब मन हो तो, वहीं रुककर जगन्नाथ के दूर से दर्शन करें या फिर पंडे के साथ आगे हो लें। आगे पंडा एक मनोकामना वाले पेड़ से होते हुए प्रांगण में ही बने अन्य उपमन्दिरों को भी दिखाता है। दक्षिणा का चलन हर जगह है। लेकिन यह सांसारिक परम्परा अपने विवेक से ही निभाएँ। सड़क तक आते ही अपने भूत और भविष्य से फिर तार जुड़ जाते हैं। जैसे किसी जादू के प्रभाव से बाहर आए हों। पुरी के जगन्नाथ मंदिर में प्रभु दर्शन के बाद समुद्र दर्शन भी करने ही चाहिए। समुद्र का नीलवर्ण जब क्षितिज रेखा पर नीले गगन से मिलता है, तो प्रभु की विशालता के प्रमाण की आवश्यकता नहीं रह जाती।

आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को, तीनो प्रभुविग्रह, तीन रथों पर प्रति वर्ष यात्रा हेतु निकलते हैं, सातवें दिन लौट आने के लिए। यह यात्रा निश्चय ही अद्वितीय है वह अनेकों व्यस्तता भरे आयोजन भी, जो पुरी का यह धाम अनुदिन वर्षानुवर्ष पूरा करता है, नौ सौ वर्षों से अब तक निर्बाध निरंतर।
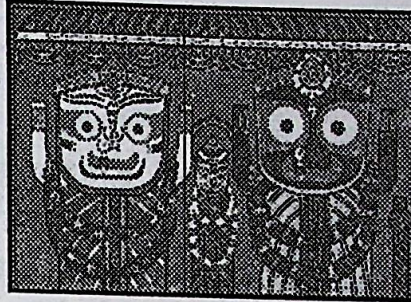
कागलां कै सराप सूं ऊंट कोनी मरै

सं०—डॉ० सांवरमल नदीवाला

❖ कांदा खाया कमवजां घी खायो गोलांह।
चूरु चाली ठाकरां, बाजंतै ढोलांह।।
राठौड़ों को प्याज खाने को मिला और गोलों ने घी के माल उड़ाये। हे ठाकुर साहब! इसी का फल है कि आपका यह किला ढोल बजाते हुए हाथ से निकल रहा है।

❖ कांदे वाला छीलका है उचीदै जितणी-ई बास आवै।
प्याज वाले छिलके हैं, उन्हें जितना उधेड़ा जाय, उतनी ही दुर्गन्ध आती है। बुराई की जितनी तह में जायेंगे, उतनी ही अधिक बुराई नजर आयेगी।

❖ कांधिया थोड़ा ई बलै हैं।
जो शव को कंधे पर ले जाते हैं, वे थोड़े ही जलते हैं। दंड दोषी को ही मिलता है, निर्दोष को नहीं।

❖ कांधे पर छोरो, गांव में ढिंढोरो।
कंधे पर लड़का है और गाँव में ढूँढ़ता है।
मि० काख में छोरो, गाँव में हेरो।

❖ काकड़ी की चोरी रं मूकां की मार।
अपराध के अनुरूप दंड दिया जाता है।

❖ काका खोखो पायो, कह, काक कै सागै तो ई गैरा करैगी।
हे चचा! मुझे शमीफल मिला। उत्तर में उसने कहा, चचे के साथ तो इनकी ही बहुतायत रहेगी। संग के अनुरूप ही फल मिलते हैं।

❖ काग कुहाड़ी कुटिल नर, काटै ही काटै।
सुई सुहागो सापुरुष, साठै ही सांठै।।
कौवा, कुल्हाड़ा और कुटिल मनुष्य, ये काटते ही काटते हैं। सुई, सुहागा और सत्पुरुष, ये जोड़ते ही जाते हैं।

❖ काग पढ़ायो पींजरै, पढ़गो च्यारूं वेद,
समझायो समझ्यो नहीं, रह्यो ढेढ को ढेढ।
कौवे को पिंजड़े में बन्द रखकर चारो वेद पढ़ा दिये गये किन्तु उसकी बुद्धि में कुछ न बैठा।
मि० स्वभावो दुरतिक्रमः।

❖ कागलां कै काछड़ा होता तो उड़तां कै ना दीखता।
कौवों के अंडकोश होते तो उड़ते हुओं के अवश्य दिखलाई पड़ते।
गुण यदि मनुष्य में हो तो साफ दिखाई देते हैं।

❖ कागलां कै सराप सूं ऊंट कोनी मरै।
कौवों के शाप से ऊंट नहीं मरते।
दुष्टों की दुर्भावना से समर्थों का कुछ नहीं बिगड़ता।

❖ कागलो हंस हाली सीखै हो सो आप हाली भी भूलगो।
कौवा हंस की चाल सीख रहा था, अपनी भी भूल गया।

❖ कागा किसा धन हडै, कोयल किसकूं देय।
जीभड़ल्यां कै कारणै, जग अपनो कर लेय।
कौवा किसका धन हरण करता है और कोयल किसको देती है? केवल जीभ अर्थात् मधुर वाणी के कारण ही कोयल संसार को अपना बना लेती है।

क्रमशः.....

वेणुवन

गतांक से आगे ....

–डॉ० चित्रा चतुर्वेदी 'कार्तिका'

जैसे 'तू भरी दुपहरिया न जाने कहाँ-कहाँ, इमली और पीपल तले घूमता रहता है। भूतनियों-प्रेतनियों का डेरा रहता है वहाँ। कंस के चर अलग पीछे लगे रहते हैं। जाने क्या-क्या प्रलाप कर रहा है! ज्वर तो नहीं है तुझे?'

'न-न मुझे ज्वर नहीं' – उसने माँ के हाथ को हटा दिया।

'तो कैसी बात कर रहा है? कौन मिली थी तुझे?'

'नहीं ज्ञात माँ, बड़े ही सुन्दर नेत्र थे उसके, मृगनयनी सी'

'अहोऽ! अभी तक तो संगीत और नृत्य प्रवीण था मेरा लाल। अब काव्यगीत भी रचने लगा क्या? 'खंजननयनी', 'मृगनयनी! ये शब्द तुझे कहाँ से मिल गये?'

सुदूर शून्य में खोए हुए थे उसके बाल-दृग। स्वप्न देखता सा बोल रहा था।

'नहीं ज्ञात माँ। उसे देखकर ऐसा लगता है कि इतने सुन्दर नयन तो केवल मृग के ही होते हैं, किसी गोपी के नहीं।'

'अहोऽऽऽ! तो कोई नई गोपी मिली थी तुझे? कहाँ मिली?'

'हाँ! एक मिली थी कोई, वृषभानु नाम बताती थी अपने पिता का।'

'अरे वह रूपराशि? वह कहाँ मिल गयी तुझे? उसे तो दिन में देखकर बड़ो-बड़ों के नेत्र चौंधिया जाते हैं। वह तुझे कहाँ दिखी?'

'अम्ब! कितनी ......कितनी .....कितनी सुन्दर है न वह?' –गद्‌गद कंठ से बोलते समय कान्हा का मुख भी सहस्रदल सा खिल पड़ रहा था।

'हाँ! ऐसा स्वरूप पाया है उसने कि बिल्कुल अप्सरा लगती है अप्सरा। बल्कि जैसे देवराज इन्द्र की कन्या जयन्ती ही आ गई हो। मारे भय के माता-पिता उसे घर के

भीतर ही रखते हैं' – पितामही ने आंखे बड़ी-बड़ी करके कहा।

'भय क्यों पितामही?'

'अरे राजा कंस सुन्दर बालाओं को पकड़वा जो लेता है। मथुरा में रख लेता है अपने महल में, नहीं तो भिजवा देता है मगध। वहाँ का राजा जरासंध बड़ा क्रूर है। मथुरा की भी बड़ी बुरी स्थिति है। लोकजन अपनी स्त्रियों की रक्षा के लिए बड़े त्रस्त रहते हैं।'

'मैं जरासंध को मार डालूँगा। और मथुरापति को भी! ये लोग अधर्मी हैं न?' कान्हा ने अपनी सुदृढ़ मांसपेशियों वाली बाहु ऊँची करके हिलाते हुए कहा।

तभी रोहिणी कुछ सोचते हुए बोल उठी– 'किन्तु माता! वृषभानु अपनी पुत्री को केवल कंस के भय से ही भीतर

नहीं रखते। एक कारण और भी है उसके पीछे। जब यह पुत्री हुई थी तो कोई सिद्ध-महात्मा बता गये थे कि यह कन्या किसी योगी के पीछे बावली बनी डोला करेगी और जोगन हो जाएगी। इसलिए उसे ड्योढ़ी के भीतर ही रखा जाता है।'

कान्हा ने आँखें बड़ी-बड़ी करके सुना।

'किन्तु मेरे रहते उसे न कंस का कोई दूत ले जा सकता है, न कोई योगी-महायोगी।' वह अपने बाहु हिलाता हुआ बोला। बाल-हृदय में पौरुष की प्रथम किरण फूट पड़ी थी।

'अहो! रीझ गया मन हमारे कान्हा का उस नटखट नवेली नार पर!'- एक भावज खिलखिला कर पूछ बैठी।

'धत्' -कान्हा ने दूसरी ओर मुख घुमा लिया संकोच से।

'तो क्या वही कंजदलनयनी तुझे माखनचोर कह कर इतना रुला गई?'

वह भवें तानें, शीश झुकाए चुपचाप बैठा रहा।

'आज हमारे नटखट देवर को पहली बार 'माखनचोर' शब्द बुरा क्यों लगा, अब समझ में आया' - दूसरी भावज ने अपनी चिबुक पर तर्जनी रख कर छेड़ा।

'अरे तो बुरा नहीं लगेगा मेरे कन्हैया को! कोई भी पराई नार आकर उसे चोर कह दे, यह कहाँ की भली बात है? अब बड़ा हो रहा है, भला उसे बुरा नहीं लगेगा?- पितामही बोली।

'मैं अब बालक नहीं अम्ब!' - गंभीर होकर कान्हा ने घोषणा की।

नन्द-प्रांगण पुनः हंसी की फुहार से धुल गया। बात वैसे सच थी। उस अलबेली का तीखा बाण ऐसा लगा अन्तर में कि वहाँ सुप्त पुरुष जाग गया था। नारी से उलाहना! वह भी नीलगगन की अप्सरा सी नील घाघरा पहने न जाने कहाँ से टपक पड़ी और जो मन में आया- आँय व बाँय कह गई उससे। बुरा न लगता क्या उसे?

'अब बड़ा हो गया तू? तो ढूंढ़ एक सुन्दर सी वधू'

'पहले से ही ढूँढ़ बैठा है वह तो! किसी को ढूँढ़ना कहाँ पड़ेगा?' पुनः हँसी गूँज उठी।

'वह दिखती भर छोटी है। वैसे कान्हा से बड़ी ही होगी।'

'तो क्या हुआ! बड़ी-बहू, बड़े-भाग्य!'

'अरे कौन देगा अपनी कंचन-कला सी नवनीत बाला, इस ढीठ लंगरवा को?'- किसी ने चुटकी ली।

ढीठ लंगरवा! उसने रोष में भवें तानी। तब तक रोहिणी ने आकर सबको भोजन के लिये उठा दिया।

नील निरभ्र महाकाश पर असंख्य तरिकाएँ झिलमिला रही थीं। आम के बौर की मदमाती गंध को वसंत-समीर उड़ा लाता और वृषभानुसुता के नन्हें प्राणों को आकुल कर जाता। कैसी विचित्र, अजानी, अपरिचित सी है यह व्याकुलता! कब से वह शय्या पर पड़ी करवटें बदल रही है इस नव-व्यथा के कारण।

महाकाश पर झिलमिलाते नक्षत्रों का मणिहार पहने एक सुन्दर सा भोलाभाला मुखमंडल उभर आता हौले-हौले घुंघराले श्यामल काकपक्षों पर रेशम से बँधे मयूर-पंखों का गुच्छा झिलमिला जाता। विशाल नयन। भाल पर कस्तूरी तिलक और भोली सी मुस्कान!

'खेलने नहीं चलेगी मेरे साथ?' सुदूर क्षितिज से तैरती आती एक अनुनय भरी कातर वाणी।

वृषभानुजा ने करवट बदल ली। किन्तु उस ओर भी तारों के बीच झाँक रहा था वही मुख। नेत्र मूँदती तो मुख-छवि और स्पष्ट हो उभर पड़ती।

'खेलने नहीं चलेगी मेरे साथ?'

'नहींऽऽ। नहीं! नहीं!' - उसे अपना ही स्वर वायु प्रवाह के साथ आता हुआ सुनाई दिया।

वह आश्चर्यचकित थी स्वयं अपने ऊपर। क्षुब्ध भी थी। उस ढीठ लंगरवा के लिये वह इतना क्यों सोच रही है? वह तो दुष्ट है। उससे दूर रहना ही ठीक। ठीक ही तो उत्तर दिया था उसे कि -कौन खेले चोर के साथ। किन्तु कैसे एकाएक कुम्हला गया था नन्दनंदन का सुन्दर सा मुखकमल यह सुनते ही! स्तंभित रह गया। बेचारा आहत होकर। मैं कितनी बुरी हूँ! क्यों मन दुखा दिया बेचारे का? तो क्या हुआ! वह भी तो कम ढीठ नहीं। राह चलती ब्रजबालाओं की गगरी फोड़ देता है। माखन चुराता है। गोप-बन्धुओं को छेड़ता है। घूंघट खोल देगा उनका तो कभी माला और कंगन तोड़ डालता है। अच्छा पाठ पढ़ाया आज मैंने।

क्रमशः.....

'रस-बनमाली' की सदस्यता हेतु विभिन्न नगरों के सम्पर्क-सूत्र :-

- श्री चम्पालाल सरावगी
  सवेरा सारीज
  95,पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता-16
  ✆:22261695
- श्री ओमप्रकाश छापड़िया
  8-प्रीटोरिया स्ट्रीट
  कलकत्ता-700071
  ✆:22826663
  : 22826664
- श्रीमती रमा गुजराल
  के.1556 पालम विहार
  गुड़गाँव (हरियाणा)
  ✆:2366175
- श्री महावीर प्रसाद टाँटिया
  सी- २/३३ माडल टाउन- ३
  दिल्ली- ९ ✆:27133891
  M. 9811083393
- श्री लक्ष्मण सिंह
  टैगोर नगर (जेल के पास)
  बलिया 277001✆:220692
- श्री सजनकुमार डालमिया
  मे. पी. आर. इण्टरप्राइजेज
  आर्य कुमार रोड,
  राजेन्द्रनगर
  पटना- 800016
  ✆:0612-2663546
- श्री रामप्रसाद हलवाई
  44, चेतन क्लाथ मार्केट
  सारंगपुर, गेट,
  अहमदाबाद- 380001
  ✆:22114175,27864511
- श्री सत्यनारायण जायसवाल
  संतोष कुटी, नई सड़क
  उज्जैन (म.प्र.)
  ✆:0734-2554091,2551014
- श्री मोहन लाल जी अग्रवाल
  में. पवन मेडिकल स्टोर्स
  भालोटिया मार्केट, टाउन हाल
  गोरखपुर (उ.प्र.)-5
  ✆:0551-2337521,M.9415322662
- श्री गुलजारी लाल टीबड़ेवाल
  में. रमेश कुमार सुशील कुमार
  पाण्डेय हाता, पो. गीताप्रेस
  गोरखपुर (उ.प्र.)-5
  ✆:0551-2333731
- श्रीमती अरुणिमा
  'रामकुंज',1860/5,पाँचवाँ मेन
  आर.पी.जी. ले-आउट,
  2 स्टेज, विजयनगर
  बैंगलोर- 560040
  ✆:080-23300878
- श्री शिवकुमार कानोडिया
  'गणशालय',
  पॉलीटेक्निक रोड
  धनवाद- 828111
  ✆:203072, 204772
- श्री किशोरीलाल बगड़िया
  मे. केदारनाथ किशोरीलाल अग्रवाल
  पाण्डेयगंज, लखनऊ- 4
  ✆:2229143
- श्री बनवारीलाल पोद्दार
  जोलीमेकर अपार्टमेंट-1,
  19वाँ माला,
  फ्लैट नं. ए,194-ए,कफ परेड,
  मुम्बई-5
  ✆:22184547, 22153933
- श्री संतकुमार झुनझुनवाला
  42, मेघना, एस.वी. रोड
  शांताक्रुज, (प.), मुंबई- 54
  ✆:26460252, 26042168
- श्रीमती प्रमोदिनी मोदी
  C/102, आर्चिड इन्क्लेव
  जनकल्याण बैंक के सामने
  जे.वी.नगर, अंधेरी (ई.)
  मुंबई-59
  ✆:022-56247485
  M.:9322404512
- श्री गणेश चौधरी
  12-A-201, अशोक नगर
  भीवण्डी, थाणे (महा.)
  ✆:02522-246632
- श्री श्यामनाथ शर्मा
  22-A, अशोक नगर
  7th फ्लोर, फ्लैट नं० 701-702 भीवण्डी, थाणे (महा.)
  ✆:02522-247114
- श्री सुशील कुमार कानोडिया
  मे. कानोडिया लुब्रिकेटिंग कं०
  128/379 क ब्लाक,
  किदवई नगर, कानपुर
  ✆:0512-615264(R)
  363564(O)
- श्री संजय अग्रवाल
  101, अश्वमेघ एपार्टमेंट,
  पार्ले प्वाइंट,
  अम्बिका निकेतन रोड, सूरत
  ✆:220861
- श्री श्रवण कुमार निर्मला तायल
  C/o.श्रवण इण्टरप्राइजेज
  7- शुभम मार्केट,छावनी बाजार,
  बहराइच,
  ✆234022(O), 232895(R)
- श्री जगदीश प्रसाद तुलस्यान
  C/o.तुलस्यान ट्रेडिंग कं०
  सुभाष चौक, पडरौना,कुशीनगर
- श्री समरीश गोयल
  C129,चक, होटल न्यू शान्ति के पीछे, इलाहाबाद (उ.प्र.)
  ✆0532-2414597,2400747

सदस्यता फार्म

मैं .... आध्यात्मिक मासिक पत्रिका 'रस-बनमाली'

का सदस्य बनना/नवीनीकरण चाहता/चाहती हूँ। एतदर्थ मैं इस फार्म के साथ सदस्यता शुल्क

रु. ____ रु. (शब्दों में) ....

वार्षिक ☐ छः वर्षीय ☐ बारह वर्षीय ☐ पेट्रन ☐ सेवा निधि ☐ नकद/ड्राफ्ट/

मनीआर्डर द्वारा भेज रहा/रही हूँ।

पूरा नाम .... आयु ....

पूरा पता ....

....

फोन नं० ....

पिन कोड ☐☐☐☐☐☐

चैक/ड्राफ्ट नं० .... दिनांक ....

बैंक ....

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	१००/-
छः वर्षीय	५००/-
बारह वर्षीय	१०००/-
पेट्रन निधि	५०००/-
सेवा निधि	(स्वेच्छिक)

पत्राचार का पता

श्रीमद्भागवत ज्ञान-यज्ञ प्रचार समिति
द्वारा- कमलेश बाजोरिया
के. ४६/१०८ ए, विशेश्वरगंज, वाराणसी- २२१००१
फोन : ०५४२-२४४०६१२

नोट : कृपया मनीआर्डर/ड्राफ्ट "श्रीमद्भागवत ज्ञान-यज्ञ प्रचार समिति" के नाम ही भेजें।

निवेदन– *आप स्वयं सदस्य बनकर तथा अपने परिचितों व मित्रों को सदस्य बनने के लिए प्रेरित करके इस सत्कार्य में सहयोग कर सकते हैं। आवश्यकतानुसार इस सदस्यता फार्म की फोटोस्टेट प्रतियाँ करवाकर भी मित्रजनों से भरवाकर भेज सकते हैं।*

॥ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय॥

गुरु पूर्णिमा पर्व

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद दुःख भागभवेत्॥

सभी भक्तों एवं श्रद्धालुओं को गुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर हार्दिक शुभकामनाएँ एवं शुभ आशीर्वाद !

श्रीकान्त शर्मा

गुरुपूजन कार्यक्रम

कोलकाता

दिनांक : 21.7.2005, गुरुवार
समय : प्रातः 10 से 1 बजे तक
स्थान : 8, प्रीटोरिया स्ट्रीट, कोलकाता- 71
फोन : 033-22826663, 22826664

वाराणसी

दिनांक : 22.7.2005, शुक्रवार
समय : प्रातः 11 से 2 बजे तक
स्थान : सरावगी भवन, बी.1/128-33 डुमराव बाग, अस्सी, वाराणसी
फोन : 0542-3950366

श्रीमद्भागवत ज्ञान-यज्ञ प्रचार समिति

224, आचार्य जगदीशचन्द्र बोस रोड
'कृष्णा बिल्डिंग', कमरा नं० 511 (पाँचवाँ तल्ला)
कोलकाता- 17 ✆ : 033-22800359 (O), 24669095 (R)

के. 46/108 ए, विशेश्वरगंज, वाराणसी- 221001
✆ : 0542--2440612